'हुल पहाड़िया' : संवेदना और शिल्प

HUL PAHADIYA : SAMVEDANA AUR SHILP

शोध–निर्देशक

प्रो. संजय कुमार

आचार्य एवं अध्यक्ष

अनुसंधित्सु

जुदिथ ज़ोपारी

पंजीयन संख्या

MZU/M.Phil./ 369 of 26.05.2017

Research Supervisor

Prof. Sanjay Kumar

Professor & Head

Research Scholar

Judith Zopari

Registration No.:

MZU/M.Phil./369 of 26.05.2017

हिंदी विभाग

मिज़ोरम विश्वविद्यालय

आइज़ॉल-796004

Department of Hindi

Mizoram University

Aizawl- 796004

2018

‘हुल पहाड़िया’ : संवेदना और शिल्प

मिजोरम विश्वविद्यालय के हिंदी विषय में मास्टर ऑफ़ फिलॉसफी (एम.फिल.) की उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध

शोध निर्देशक

प्रो. संजय कुमार
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग

अनुसंधित्सु

जुदिथ ज़ोपारी
पंजीयन संख्या
MZU/M.Phil./369 of 26.05.2017

हिंदी विभाग

मिजोरम विश्वविद्यालय

आइजॉल- 796004

2018

प्रो. संजय कुमार

आचार्य एवं अध्यक्ष

हिंदी विभाग

मिज़ोरम विश्वविद्यालय

आईजाल-796004

केंद्रीय विश्वविद्यालय
A Central University
(Accredited by NAAC with 'A' Grade)

Prof. Sanjay Kumar

Professor & Head
Department of Hindi
Mizoram University,
Aizawl-796004

Mobile No. - 09402112143; 09774517465; E-mail: sanjaykumarmzu@gmail.com ; Website : www.mzu.edu.in

दिनांक: 30.07.2018

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **जुदिथ ज़ोपारी** ने मेरे निर्देशन में मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइज़ॉल की मास्टर ऑफ फिलॉसफी(एम.फिल.-हिंदी) की उपाधि हेतु '**हुल पहाड़िया : संवेदना और शिल्प**' विषय पर शोध–कार्य किया है। प्रस्तुत शोध कार्य शोधार्थी की अपनी निजी गवेषणा का फल है। यह इनका मौलिक कार्य है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध या इसके किसी भी अंश को किसी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी प्रकार की उपाधि हेतु अद्यावधि प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध को मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइज़ॉल की मास्टर ऑफ फिलॉसफी(एम.फिल.-हिंदी) की उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

(प्रो. संजय कुमार)
शोध–निर्देशक

हिंदी विभाग

मिज़ोरम विश्वविद्यालय

आइज़ॉल

जुलाई- 2018

<u>घोषणापत्र</u>

मैं **जुदिथ ज़ोपारी** एतद् द्वारा घोषित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध की विषय–सामग्री मेरे द्वारा किए गए शोध–कार्यों का सुपरिणाम है। इस शोध सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, न किसी अन्य को कोई उपाधि प्रदान की गई है और न ही यह लघु शोध–प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध मिज़ोरम विश्वविद्यालय के सम्मुख हिंदी विषय में मास्टर ऑफ फिलॉसफी(एम.फिल.-हिंदी) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(प्रो.संजय कुमार)	**(प्रो.संजय कुमार)**	**(जुदिथ ज़ोपारी)**
अध्यक्ष	शोध–निर्देशक	अनुसंधित्सु

प्राक्कथन

राकेश कुमार सिंहसमकालीन हिंदी कथा साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में आदिवासी विमर्श पर विचार करने वाले समकालीन रचनाकारों में राकेश कुमार सिंह, रणेंद्र, निर्मला पुतुल, केदार प्रसाद मीणा, अनुज लुगुन आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। रसायन विज्ञान का छात्र एवं शिक्षक होने के बावजूद राकेश कुमार सिंह ने हिंदी कथा लेखन के क्षेत्र में अपने आदिवासी कथानकों के माध्यम से गहरी छाप छोड़ी है। आदिवासियों के जीवन और उनके संघर्षों पर भारतीय इतिहास में बहुत ही कम लिखा गया है और उसपर कथा साहित्य का सृजन तो और भी कम हुआ है। राकेश कुमार सिंह ने अपने कथा लेखन के माध्यम से इस कमी को दूर करने का सार्थक प्रयास किया है। उन्होंने अपने जन्म स्थान झारखंड के पलामू और उसके आसपास के क्षेत्रों के आदिवासियों के जीवन, समाज, संस्कृति, इतिहास और भूगोल को अपने कथा लेखन का आधार बनाया है और उनमें आदिवासी जीवन और उनके संघर्षों को गंभीरता के साथ चित्रित किया है।

राकेश कुमार सिंहने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से झारखंड केआदिवासी जनजातियों के त्याग, बलिदान एवं संघर्ष, विशेषकर भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने के सन्दर्भ में, को उजागर करने का स्तुत्य प्रयास किया है। राकेश जी ने स्वधीनता संग्राम में महनीय भूमिका निभाने वाले उन उपेक्षित आदिवासियों को अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है जिनकी चर्चा न तो इतिहासकारों ने की है और न ही साहित्यकारों ने। राकेश कुमार सिंह ने उपन्यास,

कहानी और किशोर उपन्यास आदि लिखे हैं और उसमें से ज्यादा का का संबंध झारखंड के आदिवासियों के जीवन से है।

'हुल पहाड़िया' (2012)राकेश सिंह का पांचवा उपन्यास है जो सामयिक बुक्स, नई दिल्ली से वर्ष 2012 में प्रकाशित हुआ। अन्य उपन्यासों की तरह राकेश जी का यह उपन्यास भी झारखण्ड के आदिवासी समाज, संस्कृति और इतिहास पर केन्द्रित है। इस उपन्यास में राकेश जी ने झारखण्ड के आदि विद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा प्रस्तुत की है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्यवादी, शोषक नीतियों के विरुद्ध झारखण्ड के आदिवासियों ने उसकी सत्ता स्थापित होने के समय से ही लगातार विद्रोह किया था, लेकिन ब्रिटिश इतिहासकारों ने इन विद्रोहों और उनके नेताओं की सदैव उपेक्षा की- "*इस विद्रोही नायक की परम्परा में आने वाले क्रांतिकारी आदिवासी अनेक नायकों में सिदो-कान्हू, चांद-भैरव मुरमू भाइयों, बिरसा मुंडा, टाना भगत आदि के स्वातंत्र्य संघर्ष को प्रारंभ में भले ही इतिहासकारों की उपेक्षा का शिकार होना पड़ा, लेकिन बाद में वे भी उनके महत्त्व को स्वीकारने पर विवश हुए।*"

राकेश कुमार सिंह ने भारतीय इतिहास के इस कमी को पूरा करने का सफल प्रयास अपने कथा साहित्य के माध्यम से किया है। तिलका मांझी झारखण्ड के पहाड़िया जनजाति के एक ऐसे ही सुपूत थे जिन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध विद्रोह किया और अपनी जान न्योछावर की। लेकिन "*क्रान्ति के इस प्रथम अग्रदूत ने राजमहल की पहाड़ियों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्यवादी रूख के विरुद्ध नगाड़ा बजाकर एक नई शुरुआत की थी। इस महानायक तिलका मांझी को इतिहास में वह स्थान नहीं दिया गया जिसके वह हकदार थे।*

समय-समय पर विवादों से घिरे रहे इस विद्रोही नायक को अनेक बार अपने होने के प्रमाण प्रस्तुत करने पड़े।"

राकेश कुमार सिंह ने काफी लगन, मेहनत, ईमानदारी एवं शोध के उपरान्त तथ्यात्मक ढंग से तिलका मांझी की संघर्ष गाथा को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है- "*कथाकार राकेश कुमार सिंह ने बड़ी लगन के साथ इस महानायक की मुक्तिकामी चेतना के साथ उस समय के पहाड़िया समाज के दुःख-दैन्य, मरणान्तक संघर्ष और इस जनजाति की अपने काल में सार्थक हस्तक्षेप की गाथा को शब्द दिए हैं।*"

राकेश कुमार सिंह ने अपने कथा साहित्य में झारखण्ड के विभिन्न जनजातियों केविद्रोह के साथ उनकी संस्कृति, परंपरा, लोकजीवन आदि को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में भी राकेश जी ने झारखण्ड की पहाड़िया जनजाति के साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह के साथ उनकी संस्कृति, परम्पराएँ, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार आदि से जुड़े अनेक विषयों का वर्णन किया है।

मैं स्वयं भी मिज़ोरम के एक आदिवासी समाज की सदस्या हूँ और मिज़ोरम को भी अंग्रेजों ने झारखंड की भांति ही गुलाम बनाया था। यद्यपि झारखंड मिज़ोरम की तुलना में सवा सौ साल पहलेईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्य का हिस्सा बन गया था। परंतु समय के अंतराल के बावजूद दोनों क्षेत्रों की स्थिति और पीड़ा तो एक ही थी। इसलिए जब मैंनेराकेश कुमार सिंह का उपन्यास 'हुल पहाड़िया' पढ़ा तो यह मेरे मर्म को छू गया।इसके नायक तिलका मांझी की ऐतिहासिक संघर्ष गाथा, अँग्रेजी इतिहासकारों द्वारा उनकी साजिशन घनघोर उपेक्षा और राकेश जी का

सायास कठिन परिश्रम एवं शोध के उपरांत तिलका मांझी के जीवनगाथा और समरगाथा को तथ्य पूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर अपनी माटी के कर्ज को चुकाने का सार्थक प्रयास करनामुझे काफी उद्दात और रोचक लगा। इसलिए मैंने प्रस्तुत उपन्यास पर ही लघु शोध प्रबंध लिखने का निर्णय किया।

अध्ययन की सुविधा हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को चार अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

प्रथम अध्याय 'रचनाकार का परिचय और विषय की अवधारणा' है, जिसमें दो उप अध्याय हैं। प्रथम उप अध्याय 'रचनाकार का परिचय' में कथाकार राकेश कुमार सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय उप अध्याय 'संवेदना और शिल्प की अवधारणा' है, जिसमें उपन्यास की संवेदना और शिल्प की अवधारणा के सैद्धांतिक पक्ष पर संक्षेप में प्रकाश डाला किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की संस्कृति और मूल्यगत संवेदना' है, जिसमें दो उप अध्याय रखे गए हैं। इस अध्याय का प्रथम उप अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की संस्कृति' है जिसके अंतर्गत 'हुल पहाड़िया' उपन्यास के माध्यम से पहाड़िया जनजाति की संस्कृति, खान-पान, रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार, परंपरा आदि के वैशिष्टय का उद्घाटन किया गया है। इस अध्याय का द्वितीय उप अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की मूल्यगत संवेदना' है जिसमें पहाड़िया जनजाति के प्रेम, त्याग, बलिदान, पारिवारिक सम्बन्ध एवं स्त्रियों के प्रति उनकी की दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय 'ईस्ट इंडिया कम्पनी की विस्तार-नीति और तिलका-मांझी का संघर्ष' है। यह अध्याय इस लघु शोध प्रबंध का मुख्य अध्याय है। इसमें भी दो उप अध्याय हैं। प्रथम उप अध्याय 'ईस्ट इंडिया कम्पनी का हस्तक्षेप और उसकी विस्तार-नीति' है जिसमें भारतीय राजनीति में ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रवेश और उसकी साम्राज्यवादी विस्तारवादी नीतियों का पर्दाफाश करते हुए झारखण्ड के आदिवासी क्षेत्रों में उसकी अमानवीय कुटिल शोषण-नीतियों का उद्‌घाटन किया गया है।जब झारखण्ड क्षेत्र की पहाड़िया जनजाति ईस्ट इंडिया कम्पनी के इन नीतियों और शोषण का विरोध करती है और तिलका मांझी के नेतृत्व में विद्रोह करती है तब कंपनी इस विद्रोह का कड़ाई से दमन करती है। इस उप अध्याय में कंपनी के विविध रूपा दमनकारी नीतियों का भी विस्तार से विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है। इस अध्याय का द्‌वितीय उप अध्याय 'तिलका मांझी का जीवन संघर्ष' है, जिसमें पहाड़िया जनजाति के आदि विद्रोही तिलका मांझी के जीवन-चरित्र और उनके विविध रूपा संघर्षों को विवेचित एवं मूल्यांकित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'हुल पहाड़िया का शिल्प' है, इसके अंतर्गत दो उप अध्याय रखे गए हैं - 1. भाषा 2. शैली। प्रथम उप अध्याय 'भाषा' के अंतर्गत उपन्यास में प्रयुक्त भाषा, मुहावरों एवं लोकोक्तिओं आदि के वैशिष्ट्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है। द्‌वितीय उप अध्याय 'शैली' के अंतर्गत उपन्यास में प्रयुक्त विभिन्न शैलियों का विश्लेषण किया गया है।

उपसंहार के अंतर्गत प्रस्तुत शोध कार्य के अध्यायों से प्राप्त निष्कर्षों का समाहार एवं समाकलन प्रस्तुत किया गया है। अंत में परिशिष्ट एक के अंतर्गत संदर्भ

ग्रंथ सूची दी गयी है जिसके अंतर्गत प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध लेखन के दौरान जिन पुस्तकों की सहायता ली गयी है उसका संपूर्ण विवरण आधार ग्रंथ सूची एवं सहायक ग्रंथ सूची के अंतर्गत दिया गया है। परिशिष्ट दो के अंतर्गत 'हुल पहाड़िया' उपन्यास के लेखक राकेश कुमार सिंहका साक्षात्कार प्रस्तुत किया गयाहै, जिसे मैंने अपने शोध निर्देशक प्रो. संजय कुमार की सहायता से दिनांक : 25 जुलाई 2017 से लेकर 30 जुलाई 2017 के बीच लेखक का लिया था। परिशिष्ट तीन के अंतर्गतअनुसंधित्सु का संपूर्ण विवरण मिज़ोरम विश्वविद्यालय के नियमानुसार दिया गया है।

हिंदीतर भाषी होने के कारण मैं अपनी सीमाओं से परिचित हूँ। इसलिए यह मेरा सोभाग्य है कि शोध निर्देशक के रूप में मुझे प्रो. संजय कुमार, आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आईजाल जैसे सुयोग्य,उदार, संवेदनशील, ज्ञानी और कर्मठ गुरु मिले। इन्हीं की छत्रछाया में प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध अपना वर्तमान रूप ग्रहण कर सका। वरना मैं तो हिम्मत हार रही थी, इन्होंने सहारा देकर बीच मझधार से मुझे सकुशल बाहर निकाला, जिसका सुपरिणाम यह लघु शोध प्रबंध है। इसलिए मैं अपने शोध निर्देशक प्रो. संजय कुमारके कुशल मार्गदर्शन,सहयोगऔरआशीर्वाद के लिए उनकी चिर ऋणी रहूँगी। प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में जो भी अच्छी बातें हैं वो मेरे शोध निर्देशक के आशीर्वाद का सुपरिणाम है और जो भी त्रुटियाँ रह गईं हैं वह मेरी कमी है, इसे मैं खुले मन से स्वीकार करती हूँ।

हिंदी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय के अपने अन्य आदरणीय गुरुजनों- प्रो. सुशील कुमार शर्मा,डॉ. सुषमा कुमारी, श्री अमिष वर्मा, श्री रवि प्रकाश मिश्र (अतिथि व्याख्याता) का भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर बहुमूल्य

सुझाव एवं प्रेरणादायक सहयोग देकर प्रस्तुत लघु शोध कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने में मेरी मदद की।

किसी भी कार्य को पूर्ण करने में बहुत सारे लोगों का प्रत्यक्ष और परोक्ष सहयोग मिलता है। उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ। मैंने और ज़ोरमछनी पच्वाऊ ने एक साथ एम. फिल. में दाखिला लिया था और एक साथ ही लघु शोध प्रबंध लेखन का कार्य प्रारंभ किया था। इस दौरान उनका सहयोग और स्नेह मुझे हमेशा मिलता रहा है। इसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ। इसके अलावा मैं अपनी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की सहेली सुश्री पार्वती तिर्की का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने दूर रहते हुए भी शोध सामग्री के संकलन में मेरी भरपूर मदद की। मैं अपने विभाग के शोध छात्रा सुश्री अराधना शुक्ला का भी ह्रदय से आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर शोध प्रबंध लेखन के दौरान आवश्यकता पड़ने पर भरपूर मदद की।

मैं अपनी माता श्रीमती ललरिनछुङी और पिता श्री आर. ललथ्लामुअना का चिर ऋणी हूँ जिन्होंने तमाम तकलीफ़ें उठाकर मुझे इस मुकाम तक पहुँचने में मेरी मदद की है। उनका स्नेह और आशीर्वाद मेरा संबल है। मैं अपने बड़े भाइयों श्री जॉन वानललछुअनऑमा और उनकी पत्नी श्रीमती एच. ज़ोथनङूरी एवं श्री जोएल वानललल्यानज़ामा और अपने भतीजे एवं भतीजी का भी हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ। बिना इनके सहयोग के मैं इस कार्य को पूर्ण नहीं कर सकती थी।

अंत में, मैं उन सभी ज्ञात-अज्ञात विद्वानों,व्यक्तियों एवं मित्रों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिनका नामोल्लेख मैं अनजाने में ऊपर नहीं कर पाई हूँ पर

जिनका सहयोग किसी-न-किसी रूप में इस लघु शोध प्रबंध लेखन और प्रकाशन के दौरान मुझे मिला है।

(जुदिथ ज़ोपारी)
अनुसंधित्सु

‘हुल पहाड़िया’ : संवेदना और शिल्प

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्रमाण पत्र	i
घोषणा पत्र	ii
प्राक्कथन	iii-x
विषयानुक्रमणिका	xi-xii
प्रथम अध्याय : रचनाकार का परिचय और विषय की अवधारणा	**1-34**
क) रचनाकार का परिचय	
ख) संवेदना और शिल्प की अवधारणा	
द्वितीय अध्याय : पहाड़िया जनजाति की संस्कृति और मूल्यगत संवेदना	**35-62**
क) पहाड़िया जनजाति की संस्कृति	
ख) पहाड़िया जनजाति की मूल्यगत संवेदना	
तृतीय अध्याय : ईस्ट इंडिया कम्पनी की विस्तार-नीति और तिलका मांझी का संघर्ष	**63-95**
क) ईस्ट इंडिया कम्पनी का हस्तक्षेप और उसकी विस्तार-नीति	
ख) तिलका मांझी का जीवन-संघर्ष	

चतुर्थ अध्याय : 'हुल पहाड़िया' का शिल्प **96-135**

क) **भाषा**

ख) **शैली**

उपसंहार **136-152**

परिशिष्ट - 1

संदर्भ ग्रंथ सूची **153-157**

परिशिष्ट - 2

'**हुल** पहाड़िया' उपन्यास के लेखक राकेश कुमार सिंह

का साक्षात्कार **158-163**

परिशिष्ट - 3

अनुसंधित्सु का विवरण **164**

प्रथम अध्याय

रचनाकार का परिचय और विषय की अवधारणा

(क) रचनाकार का परिचय**:**

हिंदी कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श पर विचार करने वाले समकालीन रचनाकारों में राकेश कुमार सिंह, रणेंद्र, निर्मला पुतुल, केदार प्रसाद मीणा, अनुज लुगुन आदि का नाम महत्त्वपूर्ण है। रसायन विज्ञान का छात्र एवं शिक्षक होने के बावजूद राकेश कुमार सिंह ने हिंदी कथा लेखन के क्षेत्र में अपने आदिवासी कथानकों के माध्यम से गहरी छाप छोड़ी है। आदिवासियों के जीवन और उनके संघर्षों पर भारतीय इतिहास में बहुत ही कम लिखा गया है और उस पर कथा साहित्य की रचना तो और भी कम हुई है। राकेश कुमार सिंह ने अपने शोधों एवं कथा लेखन के माध्यम से इस कमी को दूर करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने जन्म स्थान पलामू और उसके आस पास के क्षेत्रों के आदिवासी जीवन और उनके संघर्षों को अपने कथा लेखन का आधार बनाया है और उन में आदिवासी जीवन और उनके संघर्षों को गंभीरता के साथ रेखांकित किया है।

जन्म :

राकेश कुमार सिंह का जन्म 20 फ़रवरी, 1960 ई. को झारखण्ड (तत्कालीन बिहार राज्य) के पलामू जिले के गुरहा ग्राम में एक संयुक्त परिवार

में हुआ था। उनके पिताजी का नाम श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह तथा माता का नाम श्रीमती शांता देवी है, उनकी माताजी अब स्वर्गवासी हो चुकी हैं। राकेश जी अपनी माँ से काफी स्नेह करते थे। इसलिए वे आज भी उनकी कमी को महसूस करते हैं और पूरी श्रद्धा के साथ उनका स्मरण करते हैं- "*खुशकिस्मत होते हैं वे जो उम्रदराज होने तक अपनी माँ की गोद में सिर रखकर सो सकते हैं। माँ के कंधे से चेहरा टिकाकर हँस सकते हैं। मैं अपनी स्वर्गीय जननी के सम्मुख शर्मिंदा था, हूँ और रहूँगा। उसने मुझे डॉक्टर बनाने का सपना देखा था और मैं नालायक उसकी उम्मीदों पर खरा न उतर सका।*"[1] इनके पिताजी हार्वे स्कूल, जपला में प्रधानाध्यापक थे जहाँ से लम्बी सेवा के उपरांत वे सेवानिवृत्त हुए। इनका परिवार एक बड़ा संयुक्त परिवार है जिसमें लगभग पचास सदस्य साथ-साथ रहते हैं। राकेश जी के दादा के दो और भाई थे और सबकी चार-चार संतानें थीं। इनके दादाजी एक स्वतंत्रता सेनानी थे और चचेरे दादाजी पटना हाई कोर्ट में वकालत करते थे। लेकिन महात्मा गांधी के चंपारण दौरे के समय उन्होंने गांधीजी का साथ दिया और महात्मा गाँधी के आह्वान पर वकालत छोड़ दी और स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। आजादी के उपरान्त उन्होंने 'गोविन्द हाई स्कूल', गढ़वा में प्रधानाचार्य का पदभार ग्रहण किया, जहाँ वे सेवानिवृत तक कार्य करते रहे।

शिक्षा एवं उपजीविका :

राकेश कुमार सिंह की प्रारंभिक शिक्षा उनके अपने पैतृक गाँव गुरहा से ही शुरू हुई जहाँ वे कक्षा चार तक अध्ययन करते रहे। पिताजी प्रारंभ में

सरकारी स्कूल में शिक्षक थे। इसलिए जहाँ-जहाँ उनका तबादला होता रहा वहाँ-वहाँ के स्कूल में राकेश जी का भी तबादला और नामांकन होता रहा। उनके पिता पलामू के जंगलों में स्थित पांकी 'माध्यमिक विद्यालय' में जब स्थानान्तरित हुए, तब कक्षा पांच में इनका नामांकन पांकी माध्यमिक विद्यालय में हुआ। छठी कक्षा की शिक्षा 'महावीर विद्यालय', गया से प्राप्त की। राकेश जी के पिताजी को जब 'हार्वे हाई स्कूल', जपला में प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया तो उन्होंने वहां सातवीं से लेकर दसवीं तक की शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद 'रांची विश्वविद्यालय' से उन्होंने स्नातक तक की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर की डिग्री 'मगध विश्वविद्यालय' बोधगया से एवं पीएच.डी की उपाधि 'वीर कुवँर सिंह विश्वविद्यालय', आरा, बिहार से प्राप्त की।

राकेश कुमार सिंह ने शिक्षा प्राप्ति के बाद अपने व्यवसायिक जीवन की शुरुआत जपला के 'सीमेंट फैक्टरी' से किया जहाँ उनकी नियुक्ति एक रसायन वैज्ञानिक (रसायनज्ञ) के रूप में हुई। इसके बाद 'पलामू क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक' में नौकरी मिलने के बाद उन्होंने सीमेंट फैक्टरी से त्यागपत्र दे दिया। परन्तु छः महीने बाद उन्हें भारतीय वन सेवा में 'वनरक्षक' के पद पर नियुक्ति मिली, लेकिन दादाजी से अनुमति नहीं मिलने के कारण उन्होंने इस पद पर योगदान नहीं किया। इसके बाद उन्हें प्रयोग प्रदर्शक के रूप में 'हरप्रसाद दास जैन महाविद्यालय', आरा, भोजपुर, बिहार में नियुक्त किया गया और वर्त्तमान में वे वहीं पर शिक्षण का कार्य कर रहे हैं।

विवाह :

राकेश कुमार सिंह ने अनीता जी से विवाह किया जिनसे वे प्रेम करते थे। राकेश जी का कहना है कि उनकी माता और अनीता जी की आँखें एक जैसी थीं जिसके कारण उन्हें अनीता जी से प्रेम हो गया था। वे कहते हैं कि- "*मुझे अनीता से प्रेम हुआ तो सिर्फ इस कारण कि उसकी कत्थई गहरी और बड़ी-बड़ी आँखें एकदम मेरी माँ की आँखें जैसी हैं। अब वह मेरी पत्नी भी है और मेरी माँ भी है।*" [2] अपनी पत्नी के विषय में वे आगे कहते हैं - "*पढ़ने के मामले में मेरी पत्नी शुरू से मरभुख्खी रही हैं। रात-रात भर जाग कर किताबें ख़त्म कर देती हैं। जब ब्याह कर आई थी तो उसके बक्सों में साड़ियों से ज्यादा वजन किताबों का था। शिवानी, अमृतलाल नागर, बच्चन वगैरह को पढ़ती। पत्नी की साहित्यिक अभिरूचि मेरे लिए विस्मय की चीज थी और उसका प्रेमी और अब पति साहित्य से विरक्त, नीरस रसायनशास्त्री भर था।*" [3] यह प्रेम उनकेवर्तमान वैवाहिक जीवन में भी बना हुआ है। इस सफल वैवाहिक जीवन से उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है जिसका नाम वरुण है जो अभी शिक्षा प्राप्त कर रहा है।

सम्मान :

राकेश कुमार सिंह को उनके साहित्यिक योगदान के कारण कई सम्मान प्राप्त हैं, जो इस प्रकार हैं :-

1. झारखण्ड का प्रतिष्ठित राधाकृष्ण सम्मान

2. मध्यप्रदेश का अम्बिका प्रसाद दिव्य रजत अलंकरण

3. कमलेश्वर स्मृति कथा सम्मान

साहित्य के प्रति प्रेरणा :

राकेश कुमार सिंह हिंदी साहित्य के विद्यार्थी नहीं थे, फिर भी हिंदी कथा साहित्य में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। हिंदी के प्रति अनुराग उनके स्कूल के समय के हिंदी अध्यापक स्व. रामदास तिवारी की देन है। उनके स्कूली समय में अभिभावकों द्वारा उपन्यास को पढ़ना एक अनुचित काम माना जाता था। परन्तु अपने हिंदी अध्यापक की प्रेरणा से ही राकेश जी उपन्यास पढ़ने लगे। अपने अध्यापक के बारे में वे आदर के साथ लिखते हैं- *"तिवारी माटसाब का कहना था परीक्षा के बाद और अगली कक्षा में नामांकन के पूर्व के समय में प्रेमचंद, प्रसाद, वृन्दावन लाल वर्मा आदि के कम से कम दस उपन्यास पढ़ जाओ।"* [4] इस तरह अपने अध्यापक की बातों का पालन करने के कारण हिंदी साहित्य में उनकी रुचि बढ़ने लगी। राकेश जी को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर कथा-लेखन की प्रेरणा मगध विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति एवं इतिहास के आचार्य स्व. डॉ. श्यामबिहारी सिंह द्वारा मिली थी। राकेश कुमार सिंह ने अपने कथा-लेखन में अपनी पत्नी के योगदान को भी स्वीकार किया है और उसे इस तरह व्यक्त किया है- *"हाँ लेखन के लिए कभी पत्नी ने रोका-टोका नहीं, बल्कि उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराने के प्रति*

सजग भी रही और कुछ दिन न लिखूं तो फिक्रमंद हो उठती है कि कहीं मेरी तबियत तो खराब नहीं।" [5]

जब उनके पिताजी को पलामू के जंगलों में स्थित 'पांकी माध्यमिक विद्यालय' में पदस्थापित किया गया, तब उन्होंने वहीं से कुछ दिनों तक स्कूली शिक्षा प्राप्त की। इस दौरान वहाँ के जंगलों, पहाड़ों, आदिवासी समाज, पर्व-त्यौहार, रीति-रिवाज आदि से उनका गहरा परिचय हुआ और उसकी गहरी छाप उनके बाल मन पर पड़ी, जिसकी अभिव्यक्ति उनके कथा साहित्य में लगातार देखी जा सकती है। राकेश जी स्वयं भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं- "*कच्ची बजरी की सड़कें थीं। मैंने पांकी में रहकर जंगल को जिया। जंगल की सुबहें, दोपहर और शामें देखीं। आदिवासियों के मेले, उत्सव, व्रत, अनुष्ठान, शिकार-हांके, देवता-ओझा, रीति-रिवाज और दुःख-दैन्य देखे। जंगल का जीवन और आदिवासियों की अदम्य जिजीविषा मुझे जादुई लगती थी। वहीं मैंने गुलेल और गोफन चलाना सीखा।*" [6]

कथा-लेखन के साथ-साथ राकेश कुमार सिंह ने आरा से निकलने वाली पत्रिका 'मित्र' के प्रवेशांक में मिथिलेश्वर के संपादकत्व में सहयोग किया। वे वर्तमान समय में लखनऊ से प्रकाशित पत्रिका 'आदिवासी समाज और साहित्य' के संपादन कार्य में सहयोग कर रहे हैं और इसके साथ ही हरप्रसाद दास जैन महाविद्यालय से प्रकाशित पत्रिका 'अभियान' के संपादकीय बोर्ड के भी सदस्य हैं। समकालीन कथा लेखन की क्षेत्र में राकेश जी पिछले दो दशकों से लगातार सक्रिय हैं।

कृतित्व :

राकेश कुमार सिंहसमकालीन हिंदी कथा साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से आदिवासी जनजातियों के त्याग, बलिदान एवं संघर्ष, विशेषकर भारत को अंग्रेजी दासता से मुक्त कराने के सन्दर्भ में, को उजागर करने का स्तुत्य प्रयास किया है। राकेश जी ने स्वधीनता संग्राम में महनीय भूमिका पैदा करने वाले उन उपेक्षित आदिवासियों को अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है जिनकी चर्चा न तो इतिहासकारों ने की है और न ही साहित्यकारों ने। राकेश कुमार सिंह ने उपन्यास, कहानी और किशोर उपन्यास लिखे हैं। इनके कुल पांच उपन्यास प्रकाशित हुए हैं - 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश' (2003), 'पठार पर कोहरा' (2003), 'जो इतिहास में नहीं हैं' (2005), 'साधो यह मुर्दों का गाँव' (2008) और 'हुल पहाड़िया' (2012) । राकेश जी के चार कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हैं- 'ओह पलामू' (2004), 'हांका तथा अन्य कहानियां' (2006), 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' (2006) और ' महुआ मांदल और अँधेरा' (2007) । उनके कुछ किशोर उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं - 'केशरीगढ़ की काली रात', 'वैरागी वन के प्रेत', नीलगढ़ का खजाना' आदि।

(i) '**जहाँ खिले हैं रक्त पलाश**':

यह उपन्यास राकेश कुमार सिंह का पहला उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 2003 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से हुआ है। राकेश कुमार सिंह ने पलामू क्षेत्र के आदिवासी जनजीवन, समाज, संस्कृति को अपनी रचनाओं का कथ्य बनाया है प्रस्तुत उपन्यास 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश' भी इससे परे नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास में आजादी के बाद के पलामू की सामाजिक एवं राजनैतिक प्रस्तितियों का स्पष्ट चित्रण लेखक ने किया है- ''*जहाँ खिले हैं रक्त पलाश... अर्थात् वह भूमि जहाँ रक्त्पलाश खिलते हैं। यह जगह है झारखण्ड। इस उपन्यास की कथाभूमि भी झारखण्ड का ही एक उपेक्षित ज़िला पलामू ही है। मृत्यु उपत्यका पलामू...! सुराज के सपनों का मोहभंग पलामू...! रक्त के छींटों से दाग़ पलामू...!*" इसलिए इस उपन्यास की पुस्तक समीक्षा करते हुए रजनी गुप्त 'इंडिया टुडे' पत्रिका में लिखती हैं कि- "*इस उपन्यास की कथा-भूमि है झारखण्ड का पलामू-जिला जहाँ दिनोदिन पपते रक्तरंजित संघर्षों और अपराधों का लेखा-जोखा लेखक ने निसंग भाव से प्रस्तुत किया है। नये-नये भूमिगत संगठनों की दास्ताँ को किस्सागोई शैली में खुरदरी भाषा के पीने औजारों के सहारे उकेरा गया है। गैर आदिवासी इलाके में गरीबी रेखा के नीचे रह रहे आम आदमी की तकलीफें, कृषि समस्यायें और दिनोदिन प्रखर होते खून-खराबों के बीच लोकसंस्कृति की धमक को उपन्यास में साफ़-साफ़ सुना जा सकता है। जंगलों के बीच फैलते रक्त-रंजित अपराधों का बयान करते समय लेखक पूरी साहसिकता के साथ अपराध जगत् और लचर राजनैतिक गठजोड़ को तोड़ता-मरोड़ता है।*"[7] समकालीन कथा साहित्य के दूसरे प्रसिद्ध लेखक मिथिलेश्वर भी लिखते हैं- "*यह गरीबी रेखा के नीचे जीती-मरती ग़ैर*

आदिवासी आबादी वाला पलामू है जहाँ पलामू का इतिहास भी है और भूगोल भी, समाज भी है और लोक भी। भयावह कृषि समस्याएँ, अँधा वनदोहन, लचर क़ानून व्यवस्था, अपराध का रानितिकरण और भूमिगत संघर्षों की खुनी प्रचंडता के बीच भी पलामू में जीवित हैं आस्थाएं, लोक संस्कृति और लोक राग के स्पंदन।" [8] आजादी ने भारतीय समाज को जहाँ साम्राज्यवादी एवं सामंती शोषण से मुक्ति दिलाई थी वहीँ आजादी के बाद भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक मंच पर एक ऐसे शोषक वर्ग का भी उदय हुआ जो आज भी भारतीय जनता का सभी प्रकार से शोषण करते हैं। पलामू की जमीन भी इन स्थितियों से बची नहीं हैं। आम जन को शोषण से मुक्ति दिलाने के नाम पर जिन आंदोलनों की शुरुआत आदिवासी जंगली क्षेत्रों में हुई थी वे अपने राजनीतिक सिद्धांतों एवं आदर्शों को भूलकर व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के माध्यम बन गए हैं। प्रस्तुत उपन्यास इन राजनीतिक आंदोलनों के भटकाव को उजागर करने के साथ-साथ उनके दुष्परिणामों को भी हमारे सामने प्रस्तुत करता है और जिसका गंभीर परिणाम इस उपन्यास के नायक एवं नायिका को भी भुगतना पड़ता हैं।

प्रस्तुत उपन्यास की शुरुआत नंदू घटवार और सात्वती पाठक (सत्तो गुरूजी) के आगमन से होती है। सत्तो गुरूजी विधवा है और एक बार अपने देवर विजयभान की काम वासना से बचने के लिए अपने बचपन के मित्र नंदू से अनुरोध करती है इस विवाद में नंदू के हाथों विजयभान मारा जाता है। सत्तो गुरूजी अपना वास्ता देकर नंदू को भगा देती है और इस हत्या की

जिम्मेदारी अपने मत्थे लेकर जेल चली जाती है परन्तु इस घटना को जंगल दस्ते का कमांडर गंगू बिन्द देख लेता है और पुलिस से नंदू को बचाने का आश्वासन देकर उसे अपने दस्ते में शामिल कर लेता है। इसके बाद नंदू जंगल दस्ते की कार्यवाइयों में भाग लेता है और उनके धाक से परिचित होता है। यहाँ उसे रहते हुए जंगल दस्ते के आन्तरिक अंतरविरोधो एवं व्याचारिक पतन का एहसास होता है। अंत में वह जंगल दस्ते से विद्रोह कर अपना अलग दल बना लेता है। यहाँ तक की ये दस्ते जन पक्षधरता को भूलकर सिद्धांत विहीन वर्चस्व की लड़ाई लड़ने लगते हैं। सिद्धांत विहीन सशस्त्र आंदोलन एवं हिंसा के जवाब में सवर्णों द्वारा भी अपनी निजी सेनाएं खड़ी कर दी जाती है क्योंकि सरकार की विफलता उन्हें स्वयं आत्मरक्षार्थ हथियार उठाने को मजबूर कर देती है इसी का परिणाम है सूईया दूबे के नेतृत्व में गिरोह का गठन। इन दस्तो एवं गिरोहों के आपसी द्वंद्व और उत्तर-प्रतिउत्तर के क्रम में पलामू की धरती रक्त रंजित होती रहती है जिससे सरकार की विफलता के साथ-साथ नक्सली आंदोलन एवं जंगल दस्तों की वैचारिक शून्यता और स्वार्थपरता का पर्दा फाश लेखक प्रकारांतर से करता हैं। ऐसे दस्तों का इस्तेमाल राजनेता अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए करते है और उन्ही की छात्र-छाया में ये दस्ते फलते-फूलते रहते हैं। उपन्यास का अंत वहां होता है जहाँ सत्तो गुरूजी मूल्यविहीन वैचारिक शून्यता से उत्पन्न हिंसा की दलदल से नंदू को निकालने के लिए घाट पर बने मंदिर में बुलाती है सूईया दूबे द्वारा मुखबीरी करने के कारण पुलिस कार्यवाई में नंदू और सत्तू गुरूजी दोनों मारे जाते हैं। इस प्रकार इन दोनों का अशरीरी पवित्र उद्दत प्रेम सिद्धांत एवं मूल्यविहीन हिंसा के बलि चढ़ जाता है।

इस उपन्यास की भाषा सरल, सहज और प्रवाहमयी है जो सम्पूर्ण कथानक को रोचक ढंग से प्रस्तुत करती है। इसलिए अनंत कुमार सिंह इस उपन्यास की भाषा की विशिष्टताओं को उजागर करते हुए लिखते है कि "*उसमें सबसे पहली बात है उसकी सुघड़ भाषा, लोक मुहावरे, स्थिति और पात्र के अनुरूप बोली। वाणी प्रवाह ऐसा कि कहीं कोई अवरोधक स्थिति नहीं, निर्वाह ऐसा जो लेखक की मेहनत, सतर्कता को परिलक्षित करे।*" [9] इस उपन्यास का कथ्य एवं शिल्प में एक गहरा ताल मेल है लोक जीवन एवं लोक संस्कृति के साथ-साथ पलामू आँचल की मिट्टी की गंध इस उपन्यास से आती है।

(ii) **'पठार पर कोहरा' :**

पठार पर कोहरा राकेश कुमार सिंह का दूसरा उपन्यास है जो वर्ष 2003 में भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास भी पलामू आँचल पर ही केन्द्रित है। इस उपन्यास में भी पलामू के जंगलों में रहने वाले आदिवासियों के दर्द की दास्तान कही गयी है जो सरकारी तंत्र की विफलता का दंश झेल रहे होते हैं। इसमें आदिवासी जनजीवन सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए सुरेन्द्र दूबे इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए समीक्षा में लिखते हैं- "*जंगलों में शताब्दियों से प्रकृति की गोद में पल रहे वनवासी प्राकृतिक आपदाओं और शोशंपूर्ण व्यवस्था के पाटों में पिसते रहे हैं। वे अपनी जिजीविषा मस्ती और आंतरिक उर्जा से प्राकृतिक आपदाओं से तो*

जूझ लेते हैं, किन्तु मानवीय आपदाओं का क्या करें। ये आपदाएं तो अपने चेहरे पर भांति-भांति के मुखौटे लगाकर आती हैं और उन्हें पूरी तारागं निचोड़ कर तड़पने भी नहीं देतीं। सेवा और शिक्षा के नाम पर कभी इन्हें गोरी चमड़ी वाले या बहरी मिशनरियाँ लूटकर छिन्नमूल करती हैं तो कभी ठेकेदार, सूदखोर या व्यापारी। कभी इनकी भलाई के नाम पर सरकारी योजनाओं को लेकर आनेवाले कर्मचारी अधिकारी इन्हें ठगते हैं तो कभी स्वयंसेवी संस्थाओं और सेनाओं के लोग। लूट और ठगी के चक्रव्यूह में फंसे इन वन्पूत्रों के लिए वनिए कल्याण योजना का सर्वाधिक लाभ कस्बों, शहरों या महानाग्रों में रह रही इन्ही के बीच की मलाईदार परतें उठाती हैं। बीहड़ों में रहने वाले वनवासी तो आज भी महाजन के कर्ज में जन्म लेता है, बाबू की बेगारी में खटता है और साहू के कर्ज में मर जाता है। पठार पर कोहरा झारखण्ड क्षेत्र में रह रहे ऐसे ही वनवासियों के जीवन की एक सही और सच्ची तस्वीर है।" [10]

यह उपान्यास झारखण्ड के आदिवासी समाज की विभिन्न समस्याओं को बड़ी बेबाकी से उजागर करता हैं। इस उपन्यास में '*पर्यावरण संकट, राष्ट्रभाषा का सम्मान, धर्मांतरण की समस्या, साम्यवाद, कम्युनिस्ट माने क्या, शिक्षा विभाग की धांधली, इमानदारी का परिणाम, स्त्री जीवन, बिरसा मुंडा की जनजातीय स्वाधीन चेतना और स्वाधीनता संग्राम में उनका योगदान, इनके बरक्स इन जनजातियों के शोषण का आदिम सिलसिला, झारखण्ड के बीहड़ों में सामंती साम्राज्य, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, पुलिस की अकर्मण्यता, ऐसे अनेक प्रश्नों को बुनता हुआ उपन्यासकार खड़ा करता है।*

जंगल की एक कथा जो कथा यथार्थ की स्याह चादर ताने बिहार से निकलकर सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रगतिशील पर छाने लगती है।' [11]

इस उपन्यास का मूल कथ्य आदिवासी जनजीवन की त्रासदी का उदघाटन है। राकेश कुमार सिंह ने यथार्थवादी शैली में इस कटू यथार्थ को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास का नायक संजीव सान्याल है जो रांची के निकट एक विद्यालय में अध्यापक है। संजीव स्वभाव से इमानदार और भ्रष्टाचार विरोधी है परन्तु आजादी के बाद का जो शासन तंत्र विकसित हुआ वो अकंट भ्रष्टाचार में लिप्त है। संजीव का विद्यालय भी इसका अपवाद नहीं है। संजीव अपने विद्यालय के भ्रष्टाचार के विरुद्ध जब आवाज उठता है तब उसका तबादला आदिवासियों के एक छोटे से गाँव 'गजलीठोरी' में कर दिया जाता है। इस स्थानांतरण से संजीव संघर्षों के नए चक्र में उलझ जाता है। क्योंकि गजलीठोरी के विद्यालय का अस्तित्व केवल कागजों पर ही है और इस विद्यालय के नाम पर जो भी अनुदान और सहायता आती है उसे सरकारी कर्मचारी, गाँव के महाजन और साहूकार आदि मिल बाँट कर खा जाते हैं। लेकिन संजीव का चरित्र इसमें बाधक हो सकता है इसलिए संजीव के गजलीठोर पहुँचने के पहले ही उसे कम्युनिस्ट कहकर आदिवासी गांववालों में बदनाम कर दिया जाता है। परिणाम स्वरुप जब वह गजलीठोर पहुँचता है तो कोई भी गाँव वासी उसे अपने घर में आश्रय नहीं देता है। परिणाम स्वरुप उसे गाँव के बाहर गाँव से बहिष्कृत जीवन जी रही उपन्यास की विधवा नायिका रंगेनी के घर शरण मिलती है। रंगेनी का जीवन भी कम कष्ट में नहीं रहा है।

उसका कई अवसरों पर बलात्कार किया जाता है जिससे वह गर्भवती हो जाती है और एक सोनारा नामक बेटे को जन्म देती है। बाद में संजीव रंगेनी और सोनारा की मदद से आदिवासी गांववालों को समझाने में सफल हो जाता है। परिणामस्वरुप गांववाले अपने बच्चों को विद्यालय भेजने लगते है। संजीव अपने विद्यालय के मुंडा आदिवासी बच्चों में आदिवासी स्वाभिमान की भावना भरने लगता है। संजीव के परिश्रम से गजलीठोरी का परिवेश बदलने लगता है। संजीव ठेकेदार और साहूकार के आर्थिक दुश्चक्र में आदिवासी के फस कर शोषित होता हुआ देखकर को-ऑपरेटिव सोसाइटी का निर्माण कराता है और सस्ते दर पर आदिवासियों को कर्ज उपलब्ध कराकर उन्हें ठेकेदार और साहूकार के शोषण तंत्र से मुक्ति दिलाता है। इन घटनाओं से उसके सारे विरोधी बौखला जाते है और मिलकर उसकी हत्या कर देते हैं जिसे सुनकर के सारा आदिवासी समाज उसकी लाश की तरफ दौर पड़ता है। यहाँ जा करके इस उपन्यास का अंत होता है।

शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास पञ्च अध्यायों में विभक्त है फिर भी यह "*अपने कलेवर में रोचकता लिए हुए शुरू से अंत तक पाठक की जिज्ञासा को बनाये रखने में सफल है। आदिवासी अंचल के रहन-सहन, बोली-वाणी, तीज- त्यौहार, मान्यताओं-आस्थाओं के साथ-साथ जंगल के पर्यावरण के बाबत लेखक कहानी में यथा जगह उपयोगी जानकारियां देता चलता है। कथानक में हिल मिल गयी सूचनाएँ कथ्य को निबंधात्मक नहीं बनती। वातावरण को पत्रों की मनःस्थिति से जोड़कर वर्णन करने के दिल चस्प प्रयोग*

से भी कथा में एक लैय बनी रहती है।"[12] अंतत: यह कहा जा सकता है कि 'पठार पर कोहरा' अपने आंचलिक कलेवर में पलामू आंचल के यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है। इसलिए श्यामसुंदर दूबे लिखते है कि "*उपन्यास में स्थानीय रंगतों की खुली-खुली उजास है। पलामू आँचल के दर्द-पीर, बोली-बानी, आस्था-विश्वास, दावा-दरमल, कथा-गीत, जंगल-पहाड़, नदी-नाले, चिरई-चिनगुन, पेड़-फूल इनकी प्रस्तुति विजातीय नहीं है। वे कथा विकास में मानवीय स्वभाव के अनुकूल सहज ही संभव होते चलते है। यहीं आंचलिक उपन्यासों की एक सशक्त पहचान है जो केवल अंचल जीवी नहीं है।*"[13]

(iii) **'जो इतिहास में नहीं हैं'** :

राकेश कुमार सिंह का तीसरा उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' है जो सन् 2005 ई. में भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। यह एक वृहद्काय उपन्यास है जिसकी कथावस्तु 488 पृष्टों में फैली हुई है । यह उपन्यास झारखण्ड के आदिवासियों को केंद्र में रखकर लिखा गया है। सन् 1765 ई. में पलासी एवं बक्सर के युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मुग़ल बादशाह से प्राप्त हुई उसके बाद अंग्रेजों ने इस क्षेत्र का आर्थिक शोषण प्रारंभ किया और उनकी पहली गाज झारखण्ड के आदिवासियों पर गिरी। कम्पनी के इस अन्याय, अत्याचार, शोषण और

जबरदस्ती थोपी गई गुलामी से स्वभाव से स्वतंत्र आदिवासी परेशान हो गए और उन लोगों ने कम्पनी के साम्राज्यवाद और उसके शासन के विरुद्ध विद्रोह किया। यह उपन्यास सन् 1855 ई. के सिदो मुर्मू के अगुआई में चले महान संताल विद्रोह पर आधारित है। इस तरह के और भी कई आदिवासी विद्रोह ईस्ट इंडिया कम्पनी और अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध सन् 1857 ई. से पूर्व में भी हो चुके थे जिन्हें कम्पनी ने बल पूर्वक दबा दिया था और जिसका उल्लेख इतिहास में नहीं किया था। ऐसे ही झारखण्ड के एक आदिवासी विद्रोह को केंद्र में रखकर राकेश कुमार सिंह ने इस उपन्यास की रचना की है जिसमें *"सन् 1857 के पूर्व हुए इन आंदोलनों के नायक वे लोग हैं जिनके जल, जंगल और जमीन के नैसर्गिक अधिकारों से उन्हें लगातार बेदखल किया जाता रहा है। अंग्रेजी हुकूमत, जमींदार और साहूकार के त्रिगुट ने वस्तुतः इन वनपुत्रों को उनके जीने के प्राकृतिक आदिकार से वंचित रखा था। ऐसे में सिदो, बिरसा मुंडा जैसे लड़ाकों की अगुआई में संताल क्रांति 'हुल' का नगाड़ा बज उठता है। इस क्रान्ति को मात्र विद्रोह नहीं कहा जा सकता। वरन अपनी अस्मिता, स्वायत्ता और संस्कृति की रक्षा के लिए यह उनका संघर्ष है। इसमें उन्हें पराजय और यातनाएँ ही बार-बार हाथ लगती हैं। उनके सपने बार-बार टूटते हैं। फिर भी, उनकी अपराजेय अपनी आजादी के लिए संघर्षरत रहती है।"*[14]

अपनी प्राकृतिक स्वतंत्रता झारखण्ड के आदिवासी कम्पनी के हाथों गवाना नहीं चाहते थे इसलिए उन लोगों ने अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए बार-बार अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध विद्रोह किया और उस महान यज्ञ में अपन

जीवन होम किया परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा लिखे गए इतिहासों में उन वीरों का नाम कहीं भी दर्ज नहीं किया गया या अगर किया भी गया तो बहुत ही हलके ढंग से, परन्तु ऐसे वीर योद्धा झारखण्ड के आदिवासी लोक जीवन में महानायक की तरह पूजे जाते हैं। यह उपन्यास झारखण्ड के जंगलों में रहने वाले आदिवासियों की मुक्तिकामी समरगाथा का एक तरह से ऐतिहासिक दस्तावेज है जिसे इतिहास के पन्नों में विद्रोह का नाम दिया गया। भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत सन् 1857 ई. से मानी जाती है परन्तु इसके पूर्व ही "*ई. सन् 1781 में तिलका मांझी ने अंग्रेजी राज को आमन्य कर आन्दोलन किया। स्थ्याई बंदोबस्ती की छलना के बाद वनवासियों का आक्रोश ई. सन् 1798 में 'तमाड़-विद्रोह' के रूप में कूटा। तमाड़ में ही ई. सन् 1800 में दुखन मांझी तथा पुनः तमाड़ में ही ई. सन् 1819 में सदन-कोंता मुंडा के नेतृत्व में आन्दोलन हुई। ई. सन् 1831 में सिंहभूम में विन्दराई-सिंगराई मानकी की नेतृत्व में द्वितीय 'कोल-विद्रोह' और फिर ई. सन् 1855 में सिदो, कान्हू, चाँद और भैरव मुर्मू नामक चार सहोदर संतालों की अगुआई में महान संताल क्रान्ति 'हुल' का नगाड़ा बजा। उपरोक्त महत्त्वपूर्ण आंदोलनों के अतिरिक्त भी कई अन्य छोटे-मोटे चक्रवात उठे जो अल्पकालिक तथा अल्पप्रभावी रहे। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त कथित 'विद्रोहों' का समय ई. सन् 1857 के पूर्व का था।*"[15] यह सभी विद्रोह एक विशेष अर्थ में समान हैं क्योंकि इन सभी विद्रोहों में झारखण्ड के शोषित आदिवासियों ने कम्पनी की साम्राज्यवादी सरकार एवं नीतियों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया था और अपनी आजादी के लिए अपनी कुर्बानी दी थी। और इस तरह के विद्रोह कम्पनी

की साम्राज्यवादी सरकार एवं नीतियों के विरुद्ध सन् 1857 तक लगातार होते रहे थे जिसकी चरम परिणति सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में हुई थी जिसको भी ब्रिटिश इतिहासकारों ने सिपाही विद्रोह कहकर उसकी उपेक्षा की थी।

प्रस्तुत उपन्यास सन् 1855 के संथाल विद्रोह पर आधारित है। यह उपन्यास तीन खण्डों में विभक्त है। पहले खंड में हुल(विद्रोह) का प्रारंभ, उत्कर्ष और विफलता का वर्णन है, दूसरे खंड में कम्पनी द्वारा झारखण्ड के जनजातियों का किए जा रहे शोषण का चित्रण है। तीसरे खंड में हुल(विद्रोह) की विफलता का उल्लेख है। उपन्यास के पहले खंड में विद्रोह के कारणों का विस्तृत उल्लेख है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी कैसे आदिवासियों का आर्थिक शोषण करती है। इस खंड में आदिवासियों के लोक जीवन और लोक संस्कृति और परम्पराओं के विभिन्न अंगों का भी खूबसूरती से चित्रण किया गया है। उपन्यास के दूसरे भाग से कम्पनी द्वारा जंगलों के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के साथ-साथ वहाँ के जमींदारों तथा साहूकारों के साथ उनकी सांठ-गाँठ का पता चलता है। कम्पनी ने छल-बल-कल का सहारा लेकर आदिवासियों को अपने चक्रव्यूह में फसाया और उनका शोषण प्रारंभ किया। जिसके कारण आदिवासियों में कम्पनी की नीतियों के विरुद्ध विद्रोह की भावना जगी और सिदो मुर्मू के नेतृत्व में विद्रोह प्रारंभ हो गया। धीरे-धीरे इस विद्रोह की आग शहरों तक भी पहुँच गई और उसे दबाने के लिए कम्पनी को और ज्यादा सेना भेजनी पड़ी। सीधी लड़ाई में हार जाने पर कम्पनी 'फूट डालो और राज करो' की

नीति पर चलने लगी और महाजनों के साथ-साथ कुछ संथाल विद्रोहियों को फोड़ कर गुप्तचरी का काम करने लगी। फलस्वरूप कम्पनी ने संथाल विद्रोह को कुचल दिया। उपन्यास के तीसरे खंड में इस विफल विद्रोह की शेष बची कुछ चिंगारियों का उल्लेख है। यद्यपि सिदो मुर्मू के शहीद होने के बाद यह विद्रोह बिखर गया था लेकिन इसकी कोई न कोई चिंगारी उड़कर कहीं किसी दूसरी जगह विद्रोह की आग को भड़का देती थी परन्तु इस तरह के छोटे मोटे असफल विद्रोह कम्पनी को कोई ख़ास नहीं पहुंचा पाते थे और कम्पनी इन विद्रोहों को शक्ति से कुचल देती थी। इस उपन्यास के नायक हारिल और नायिका लाली अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के संघर्ष करते हुए नाटकीय घटना क्रम में सन् 1857 की क्रान्ति में शामिल हो जाते है। इस प्रकार संथाल विद्रोह पर केन्द्रित हिंदी का यह पहला उपन्यास है जिसमें राकेश कुमार सिंह ने भारत के स्वाधीनता संग्राम नई दृष्टि से विचार किया है और उसकी शुरुआत 1781 के पहले के आदिवासी विद्रोहों से मानते हैं।

(iv) 'साधो यह मुर्दों का गाँव' :

राकेश कुमार सिंह का चौथा उपन्यास 'साधो यह मुर्दों का गाँव' है जो वर्ष 2008 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास डायरी शैली में लिखा गया है जिसके लेखक दीपांकर चक्रवर्ती नामक एक पात्र है जो यूनिवर्सल इन्वेस्टीगेशन नामक अन्तराष्ट्रीय समाचार सेवा में

कार्यरत है। वह भारतीय जेलों की स्थिति उसमें विचाराधीन कैदियों के जीवन, उनके अन्धकारमय भविष्य, अनिश्चित सरकारी पुनर्वास योजनाओं, सरकार की भूमिकाओं आदि का समाजशास्त्रीय अध्ययन कर रहा है। जेल के भ्रमण के दौरान उसकी मुलाकात एक विचाराधीन कैदी से होती है जो उनके गृह नगर हुसैनाबाद के रहने वाले है तथा जो कभी उसके स्कूल में प्रधानाध्यापक रह चुके है। इस उपन्यास के नायक यही विचाराधीन कैदी नंबर दो हजार एक अवनीश चन्द्र मित्रा है जिन्हें दीपांकर अवनीबाबू कहता है जो कभी बालूघाट में स्थित हार्वे हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। यह जगह पूर्व में सीमेंट कारखाने के चलते प्रसिद्ध थी परन्तु छुटभैये मजदूर नेताओं के कहने में आकर मजदूरों ने हड़ताल कर दी और मिल मालिकों ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए कारखानों में 'लॉक आउट' घोषित कर दिया। कारखानों के बंद होने से मजदूरों की हालत खास्ताहाल हो गई और पूरा शहर और समाज बदहाली में जीवन चला गया। फैक्टरी के इस लॉक आउट ने वहाँ के पूरे समाज और लोगों को बेरोजगार आलसी, नकारा बना दिया था। परिणामस्वरूप पापी पेट को भरने के लिए लोग अपराध की राहों पर निकल पड़े थे। जिनके पास सामर्थ था वे उस शहर को छोड़कर दूसरे शहरों और महानगरों में पलायन कर गए। शेष बचा समाज और जीवन जड़वत हो गया था। ऐसी स्थिति में दुसरे नियमित वेतन भोगी कर्मचारी और खुशहाल लोग शेष लोगों की इर्ष्या के पात्र बन गए थे जिससे अवनीबाबू भी बच नहीं पाए थे। उन्हें इस दूषित समाज का कोप भाजन बनना पड़ा।

एक दिन अवनीबाबू के स्कूल जाने पर उनकी पत्नी गायब हो जाती हैं और बाद में खोजने पर उनकी लाश बगल के गोदाम से मिलती है। पुलिस इस हत्या का आरोप अवनीबाबू पर मढ़ देती है और उनपर चारित्रिक पतन का आरोप लगाती है। यही नहीं उनके घर से तमंचा और नक्सली साहित्य की बरामदी दिखाकर उन्हें नक्सली घोषित कर देती है। इसी झूठे आरोपों की बुनियाद पर उन्हें एक विचाराधीन कैदी के रूप में जेल में रहना पड़ता है और पैंतीस वर्षों तक न्याय की आशा लगाये वे इस दुनिया को छोड़कर परलोक चले जाते हैं। राकेश कुमार सिंह ने इस उपन्यास के माध्यम से कारखानों के बंद होने के बाद उत्पन्न गरीबी और जहालत के साथ-साथ अपराध के बढ़ने का मार्मिक वर्णन किया है। उन्होंने कथा नायक अवनीबाबू के माध्यम से पुलिस विभाग, न्यायलय और जेल प्रशाशन के अमानवीय चरित्र, चारित्रिक पतन एवं भ्रष्टाचार को यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया है। जिसका खुलासा स्वयं उस समय उसी थाने में पदस्थापित हवालदार अपनी जुबानी स्वीकार करता है- "*मुझे उसके हत्यारे होने पर तो विश्वास जरूर था, पर उसके नक्सली होने पर जरा भी नहीं। जो पिस्तौल हमारे दरोगा जी ने मौका ए वारदात से बारामद दिखाया था, वह में साफ़ पहचान गया थ। वह मेरे थाने के माल खाने का माल था।... दरोगा जी कहते थे कि वह औरत मास्टर के खिलाफ हमारे तुरुप का इक्का थी।... मुफ्त में तो पुलिस किसी मरते को तुलसी गंगाजल भी नहीं देने वाली। इस कहारिन से बैरिस्टर साहब ने नगद झटका था... ढाई हजार तो मेरा हिस्सा बना था... मतलब कुल रकम... कुल दस हजार के आस पास खींचे होंगे दरोगाजी ने।*" [16]

(v) 'हुल पहाड़िया' :

राकेश सिंह का पांचवा उपन्यास 'हुल पहाड़िया' है जो सामयिक बुक्स, नई दिल्ली से वर्ष 2012 में प्रकाशित हुआ। अन्य उपन्यासों की तरह राकेश जी का यह उपन्यास भी झारखण्ड के आदिवासी समाज, संस्कृति और इतिहास पर केन्द्रित है। इस उपन्यास में राकेश जी ने झारखण्ड के आदि विद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा प्रस्तुत की है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्यवादी, शोषक नीतियों के विरुद्ध झारखण्ड के आदिवासियों ने उनकी सत्ता स्थापित होने के समय से ही लगातार विद्रोह किया था लेकिन ब्रिटिश इतिहासकारों ने इन विद्रोहों और उनके नेताओं की सदेव उपेक्षा की- "*इस विद्रोही नायक की परम्परा में आने वाले क्रांतिकारी आदिवासी अनेक नायकों में सिदो-कान्हू चांद-भैरव मुरमू भाइयों, बिरसा-मुंडा, टाना भगत आदि के स्वातंत्र्य संघर्ष को प्रारंभ में भले ही इतिहासकारों की उपेक्षा का शिकार होना पड़ा, लेकिन बाद में वे भी उनके महत्त्व को स्वीकारने पर विवश हुए।*"[17]

राकेश कुमार सिंह ने भारतीय इतिहास के इस कमी को पूरा करने का सफल प्रयास अपने कथा साहित्य के माध्यम से किया है। तिलका मांझी झारखण्ड के पहाड़िया जनजाति के एक ऐसे ही सुपूत थे जिन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध विद्रोह किया और अपनी जान न्योछावर की। लेकिन "*क्रान्ति के इस प्रथम अग्रदूत ने राजमहल की पहाड़ियों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्यवादी रूख के विरुद्ध नगाड़ा बजाकर एक नई शुरुआत की थी। इस महानायक तिलका मांझी को इतिहास में वह स्थान नहीं*

दिया गया जिसके वह हकदार थे। समय-समय पर विवादों से घिरे रहे इस विद्रोही नायक को अनेक बार अपने होने के प्रमाण प्रस्तुत करने पड़े।"[18]

राकेश कुमार सिंह ने काफी लगन, महनत, इमानदारी एवं शोध के उपरान्त तथ्यात्मक ढंग से तिलका मांझी की संघर्ष गाता को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है- "*कथाकार राकेश कुमार सिंह ने बड़ी लगन के साथ इस महानायक की मुक्तिकामी चेतना के साथ उस समय के पहाड़िया समाज के दुःख-दैन्य, मरणान्तक संघर्ष और इस जनजाति की अपने काल में सार्थक हस्तक्षेप की गाथा को शब्द दिए हैं।*"[19] प्रस्तुत शोध प्रबंध के आगे के अध्यायों में विस्तार से इस उपन्यास की संवेदना और शिल्प का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाएगा।

(ख) संवेदना और शिल्प की अवधारणा :

कथा-लेखन में जतनी यथार्थ अनुभूति होगी उतनी ही ज्यादा वह पाठकों के हृदय को छूती हैं। कथा लेखन लेखक की ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान की कल्पनात्मक और कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। लेखक अपने परिवेश, आस-पास की घटनाओं आदि परिस्थितियों से प्रभावित होकर रचना का सृजन करता है। लेखक की यही अनुभूतियाँ उसके लेखन की संवेदना बन जाती हैं। रचना का निर्माण लेखक के भाव, अनुभूतियाँ और कल्पना पर ही केन्द्रित होता हैं। कथा-लेखन प्रक्रिया के दो पक्ष होते हैं - (i) इस रचना में क्या कहा गया हैं ? और (ii)किस प्रकार से उसे अभिव्यक्त किया गया हैं ? पहले वाला पक्ष संवेदनात्मक है और दूसरा वाला पक्ष शिल्पगत है। संवेदनात्मक पक्ष के अंतर्गत लेखक क्या कहना चाहता है ? उद्देश्य क्या है ? किस तरह की भावनाओं और अनुभूतियों को लेखक ने व्यक्त किया है ? शिल्पगत पक्ष के अंतर्गत लेखक ने किस तरह की भाषा का प्रयोग किया है और किन-किन शैलियों का प्रयोग किया है। संवेदनात्मक पक्ष रचना का आतंरिक पक्ष होता है तो शिल्पगत पक्ष उसका बाह्य रूप है। संवेदना पक्ष जहाँ रचना की आत्मा होती है तो शिल्प पक्ष उसका बाह्य शरीर या ढांचा जिसमें आत्मा बसी रहती है। परन्तु एक के बिना दुसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। रचना में दोनों का सम्बन्ध होता है।

1. संवेदना : अर्थ

संवेदना का अंग्रेजी शब्द है 'सेंसेशन' (sensation) और हिंदी में इसका अर्थ सहानुभूति या अनुभूति होता है। "*संवेदना शब्द की व्युत्पत्ति 'सम' उप्सर्ग पूर्वक 'विद्' धातु में ल्युट प्रत्यय लगाने से होती है। संवेदनम्-ना (संवेदना) (सम्+विद्ल्युत) प्रत्यक्ष ज्ञान, जानकारी तीव्र अनुभूति भावना अनुभूति, भोगना आदि।*"[20] संवेदना का अर्थ कुछ कोशों में इस प्रकार दिया गया है -

ज्ञान शब्द कोश के अनुसार, "*संवेदना, ज्ञान, अनुभूति जताना सूचित करना, प्रकट करना।*"[21]

प्रमाणिक हिंदी कोश के अनुसार, "*मन में होने वाले बोध या अनुभव, अनुभूति ही संवेदना है।*"[22]

मानविकी पारिभाषिक, कोश दर्शन खंड के अनुसार संवेदना का अर्थ "*किसी बाह्य या आतंरिक प्रभाव से इन्द्रियों और उनसे सम्बंधित स्नायु प्रणाली की उत्तेजना से उत्पन्न होने वाला अनुभव संवेदना है। संवेदना के दो पक्ष हैं मनोवैज्ञानिक और ज्ञानात्मक। इसमें दूसरा पक्ष दर्शन के लिए महत्त्व रखता है यद्यपि इन दोनों को अलग करना संभव नहीं हैं।*"[23]

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार संवेदना का अर्थ इस प्रकार है- "*साधारणतः संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मूलतः वेदना या*

संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। अंग्रेजी में इसके लिए सिमपैथी, फीलिंग या फोलोफीलिंग आदि अनेक शब्द प्रचलित हैं। मनोविज्ञान में इसका अर्थ ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव या सैन्सेशन के रूप में होता है।"[24]

हिंदी के विभिन्न साहित्यकारों ने संवेदना को इस प्रकार है परिभाषित किया हैं।

अज्ञेय के अनुसार "*संवेदना वह यंत्र है जिसके सहारे जीवनयष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ जोड़ती है वह संबंध एक साथ ही एकता का भी और भिन्नता का भी क्योंकि उसके सहारे जहाँ जिवयष्टि अपने से इतर जगत को पहचानती है वहां उससे अपने को अलग भी करती है।*"[25]

डॉ. राजेन्द्रकुमार के अनुसार : "*संवेदना विशुद्ध ऐन्द्रिय संवेदना का पर्याय नहीं। ऐन्द्रिय संवेदना बाह्य यथार्थ के ऐन्द्रिय प्रभावों को ग्रहण करते हैं, बस उनकी इतनी ही इयत्ता है। संवेदना इससे कुछ आगे की चीज है। ऐन्द्रियप्रभावों का ग्रहणशीलता के स्तर पर प्रभाव न रहता बल्कि आतंरिक यथार्थ के अनुभव में ढल जाना और फिर किसी बृहत्तर किन्तु अन्त्बोध या कि भावदृष्टि से उसका संयोजित होना- इस पूरी प्रक्रिया के परिणाम स्वरुप जो चीज उभरती है, वस्तुतः उसी को संवेदना का नाम दिया जाना चाहिए।*"[26]

डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार : "*संवेदना से अभिप्राय है वह अनुभूति प्रवणता जो सुक्ष्मातिसुक्ष्म प्रभाव को ग्रहण करने की क्षमता से पारित होती है। इसका अर्थ यह भी होता है कि कोई साहित्य किन भावनाओं की प्रीति हमें करा सकने में समर्थ होता है। भावनाओं के ये स्वर विधि होते है। वह आधुनिक बोध भी हो*

सकता है या मानव अस्तित्व की बुनियादी विवशताएँ भी। वह व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना भी हो सकती है या यथार्थ के नए तत्वों की अन्विति भी... /"[27]

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता हैं कि लेखक की ऐन्द्रिय भाव और जीवन की अनुभूति का संगठित रूप संवेदना है। लेखक अपने जीवन की अनुभूतियों को कल्पना के साथ जोड़कर अपने रचना की संवेदना का निर्माण करता हैं। संवेदना के लिए कथ्य, विषय-वस्तु, भाव पक्ष आदि का भी प्रयोग किया जाता है।

संवेदना : स्वरुप

साहित्य का सम्बन्ध संवेदना से है। साहित्य अपनी परिस्थिति परिवेश के साथ रचनाकार का व्यक्तिगत अनुभव लिए होती है। रचनाकार कथा-लेखन में अपनी भावना, अनुभव को प्रस्तुत करता है जिसको पढ़कर उसकी अनुभूति पाठकों के हृदय तक पहुँच जाती हैं। यहीं भूमिका संवेदना पूरी करती है। रचना की संवेदना और रचना की अंतर्वस्तु में भिन्नता नहीं है। साहित्य सृजन में संवेदना मूल तत्त्व है। लेखक अपने परिवेश, आस-पास के परिवेश एवं समाज से प्रभावित होता है। रचनाकार अपने समय के समाज की दशा-दिशा के साथ अपनी रचना में प्रस्तुत होता है।

"*विषय को अंतर्स्वस्तु के स्तर तक उठाकर ली जाने वाली चीज है कलाकार का रवैया क्योंकि अंतर्वस्तु केवल यह नहीं है कि क्या प्रस्तुत किया*

गया है, किसी दर्जे की सामाजिक तथा व्यक्तिगत चेतना के साथ प्रस्तुत किया गया है, यह भी अंतर्वस्तु ही है।'[28] संवेदना के स्वरुप का तत्त्व फिशर के उपर्युक्त कथन से साफ़ हो जाता है। समाज में घटित परिस्थितयों में बदलाव से प्रभावित होकर कथा की संवेदना में भी बदलाव हो जाता है। सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में बदलाव के साथ संवेदना में भी बदलाव आ जाता है, अर्थात संवेदना एक बार तैयार किया गया साँचा नहीं है।

संवेदना में लेखक की भावुकता और कल्पनाशीलता का विद्यमान होना आवश्यक है। प्रत्येक युग में संवेदना का स्तर बदलता रहता है। रचनाकार राजनीतिक परिस्थितियों में बदलाव के साथ अपनी संवेदना में भी बदलाव लाते हैं। 19वीं शताब्दी हिंदी साहित्य में उपन्यास का शुरुआती दौर था। इस दौर में मध्य वर्गीय परिवार के यथार्थ, चारों और से पिछड़ी स्त्रियों को रचनाकारों ने लेखन का केन्द्रीय वस्तु बनाया। चलते-चलते 20वीं शताब्दी में हिन्दू- मुसलमान संबंधों की समस्याओं, उस युग के सामजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितयों के बदलाव और समस्याओं को रचनकार अपनी रचना की संवेदना के रूप में प्रस्तुत करने लगे। इसके साथ ही भारतीय इतिहास को अपने रचना-लेखन का अंतर्वस्तु भी बनाया जाता है। भारत में ब्रिटिश राज्य के रौशन भारतीय जन के संघर्ष और आजादी पाने के पश्चात के संघर्षों को भी हिंदी कथा-साहित्य में प्रस्तुत किया गया हैं।

2. शिल्प : अर्थ

साहित्य में रचनाकार अपने जीवनानुभव को अभिव्यक्त करने के लिए शिल्प का प्रयोग करता है। शिल्प शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द की 'शील' (बनना या उघना) धातु और 'प' प्रत्यय से हुई है। अंग्रेजी में शिल्प के लिए टेकनिक(technique), क्राफ्ट(craft), आर्ट(art), स्किल(skill), एक्सप्रेशन(expression) आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कुछ कोशों द्वारा दिए गए अर्थ निम्नवत हैं -

बृहत् हिंदी कोश के अनुसार शिल्प का अर्थ - "*कला, हुनर, कारीगरी, शैली से ज्यादा व्यापक वह उपादान जिसके द्वारा रचनाकार अपनी भावनाओं को किसी विशेष ढंग से ही व्यक्त कर पाता है।*"[29]

वैज्ञानिक परिभाषा कोश के अनुसार - "*साहित्यिक क्षेत्र में रचनाकार की वह कालगत दक्षता या निपुणता है, जिसके द्वारा वह अपनी कृति में अर्थ गंभीर्य विचार प्रभाव तथा शैली का निर्वाह करता है।*"[80]

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार शिल्प का अर्थ रचनाकार द्वारा किसी वस्तु को रचने का ढंग, तरीका कला है। रचनाकार अपनी अनुभूति और मन की भावनाओं को एक साकार रूप देने के लिए जिस प्रकार के तरीके को अपनाता है, वही शिल्प विधान है। 'शैली' शब्द शिल्प के लिए भी प्रयोग किया जाता है परन्तु जहाँ शिल्प का सम्बन्ध वस्तु से होता हैं और 'शैली' का सम्बन्ध भाषा से।

शिल्प : स्वरुप

रचनकार शिल्प को अपना माध्यम बनाकर अपने अनुभवों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता हैं। 'शिल्प' के अंतर्गत भाषा (language) औरशैली (style) आते हैं। रचनाकार अपनी अनुभूति को भाषा और शैली के माध्यम से ही एक साकार रूप प्रदान करता है। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने शिल्प के स्वरुप पर प्रकाश डालते हुए लिखा - "*जब भाव और अनुभूति की प्रेरणा मनुष्य के मन और मस्तिष्क में घनीभूत होती है, जब वह उसकी अभिव्यक्ति में संलग्न होता है। अभिव्यक्ति के लिए वह कभी वाणी का सहारा लेता है। कभी आकृति का लेकिन वह अपने भाव प्रकाशन में अधिक से अधिक रोचकता, आकर्षकता और प्रभुविष्णुता लाने के लिए अन्य रूप विधाओं की योजना करता है।*'[81]

साहित्य संरचना में शिल्प महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिल्प के द्वारा ही लेखक अपने अनुभवों और अनुभूतियों को प्रस्तुत कर पता है। इसके माध्यम से रचनाकार अपनी संवेदना में समर्थ होता हैं।"*शिल्प विधि से तात्पर्य किसी कृति के निर्माण की उन सारी प्रक्रियाओं तथा रचना पद्धतियों से है जिनके माध्यम से रचनाकार अपनी अमूर्त जीवनानुभूतियों, हृदय प्रभावों और भावों को मूर्त रूप देकर अधिकाधिक संवेद्य और सौंदर्यमूलक बनता है।*'[82]

रचनाकार जब कथा-लेखन में अपनी अनुभूतियों और अनुभवों को रचना शिल्प के माध्यम से अभिव्यक्त करता है तब वह उसे पाठकों तक

संप्रेषित करके उनके हृदय को मार्मिक ढंग से छू लेता है।"*शिल्प विधान रूप और अरूप के बीच अनुभूति और व्यक्ति के बीच तथा लेखक और पाठक के बीच का अनिवार्य माध्यम है। जब तक साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति की अनुवार्यता बनी रहेगी, तब तक अभिव्यक्ति के पुकार के रूप में शिल्प का महत्त्व बना रहेगा।"*[33]

साहित्य रचना-पद्धति की कोई एक निश्चित एवं स्थिर प्रक्रिया नहीं होती हैं। रचनाकार के मनोभाव, दृष्टि, विचार, रुचि आदि के बदलने के साथ-साथ साहित्य रचना में बदलाव आता है। अर्थात् रचनाकार के अभिव्यक्ति के विषय के बदलते ही शिल्प में परिवर्तन आ जाता है। शिल्प गतिशील है। प्रत्येक रचनाकार की अलग दृष्टि, अनुभव, अनुभूति, विचार आदि होने के कारण लेखक अपने उन विचारों के माध्यम से नए-नए शिल्प का प्रयोग करता है।

निष्कर्षत: संवेदना कथा-लेखन का आतंरिक रूप है और शिल्प कथा-लेखन का बाह्य रूप। संवेदना के अभाव में रचनाकार का कथा लेखन असंभव होता है। सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में जब बदलाव आता है तब रचनाकार के मन में भी बदलाव होता है और उस बदलते भावों और अनुभूति को लेखक अपनी रचना में संवेदना के रूप में प्रस्तुत करता है। रचनाकार अपने लेखन में सामाजिक यथार्थ को कल्पना के साथ समन्वित करके प्रस्तुत करता है।

रचनाकार अपनी संवेदना को प्रस्तुत करने के लिए शिल्प का प्रयोग करता है। शिल्प के माध्यम से ही अपने अनुभव, भाव और कल्पना को एक साकार रूप प्रदान करने में समर्थ रहता है। सामजिक, राजनीतिक, परिवेश के परिवर्तनों के साथ रचनाकार भी अपने शिल्प विधान में परिवर्तन लाता है। अत: संवेदना और शिल्प के प्रयोग से कथा-लेखन में सजीवता और रोचकता आती हैं।

*****

संदर्भ सूची :

1. कथाबिम्ब पत्रिका, अप्रैल-जून 2002, पृ. 38

2. वही, पृ. 38

3. वही, पृ. 34

4. राकेश कुमार सिंह, साक्षात्कार से

5. राकेश कुमार सिंह, साक्षात्कार वार्ता

6. कथाबिम्ब पत्रिका, अप्रैल-जून, 2002, पृ. 35

7. रजनीगुप्त - इंडिया टुडे, अंक 20 अक्टूबर, 2003, पृ. 61

8. जहाँ खिले हैं रक्त पलाश के फ्लैप से उद्धृत

9. अनंत कुमार सिंह, दैनिक हिन्दुस्तान, 11 सितम्बर, 2003

10. सुरेन्द्र दूबे, समीक्षा, जुलाई-सितम्बर, 2004, पृ. 39

11. डॉ. शशिकला राय, कथाक्रम, अप्रैल-जून, 2004, पृ. 102

12. मनोज कुलकर्णी, कथादेश, अक्टूबर, 2006, पृ. 95

13. श्यामसुंदर दूबे, अक्षरा, जनवरी-फ़रवरी 2006, पृ. 116

14. जो इतिहास में नहीं है के फ्लैप से उद्धृत

15. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं है, पृ. 7

16. राकेश कुमार सिंह, साधो यह मुर्दों का गाँव, पृ. 21-22

17. हुल पहाड़िया के फ्लैप से उद्धृत

18.हुल पहाड़िया के फ्लैप से उद्धृत

19. हुल पहाड़िया के फ्लैप से उद्धृत

20. वामन विश्वराम आपटे, संस्कृत हिंदी कोष, पृ. 1049

21. मुकुंदीलाल श्रीवास्तव, ज्ञान शब्द कोश, पृ. 801

22. डॉ. रामचंद्र वर्मा, प्रमाणिक हिंदी कोश, पृ. 813

23. डॉ. नागेन्द्र, मानविकी पारिभाषिक कोश, दर्शन खंड, पृ. 166

24. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश (भाग - I), पृ. 863

25. अज्ञेय, हिंदी साहित्य-एक आधुनिक परिदृश्य, पृ. 17

26. राजेन्द्र कुमार, नया प्रतीक, पृ. 27-28

27. डॉ. सुरेश सिन्हा, हिंदी उपन्यास, पृ. 57

28. अन्सर्ट फिशर, कल्पना की ज़रूरत, पृ. 141

29. कलिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दी लाल श्रीस्वास्तव, बृहत् हिंदी कोश, पृ. 1130

30. बदरीनाथ कपूर, वैज्ञानिक परिभाषा कोश, पृ. 205

31. डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, हिंदी कहानी में शिल्प विधि का विकास, पृ. 1

32. डॉ. जवाहर सिंह, हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि, पृ. 1

33. डॉ. सुरेश बाबर, भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन, पृ. 170

द्वितीय अध्याय

पहाड़िया जनजाति की संस्कृति और मूल्यगत संवेदना

(क) पहाड़िया जनजाति की संस्कृति:

राकेश कुमार सिंह ने झारखण्ड के विभिन्न जनजातियों केविद्रोह के साथ उनके संस्कृति, परंपरा, जनजीवन आदि को भी केंद्र में रखते हुए अनेक उपन्यास लिखे हैं। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में भी राकेश जी ने झारखण्ड की एक विशेष जनजाति के उपनिवेशवाद के विरुद्ध विद्रोह के साथ उनकी संस्कृति, परम्पराएँ, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार आदि से जुड़े अनेक विषयों का वर्णन किया है।

पहाड़िया जनजाति की संस्कृति का वर्णन करने से पहले हमें इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि संस्कृति किसे कहते हैं? अंग्रेजी में इसे 'कल्चर' (culture) कहा जाता है। कैंब्रिज डिक्शनरी के अनुसार 'कल्चर' का अर्थ है - ***"The way of life, especially the general customs and beliefs, of a particular group of people at a particular time."***[1]हिंदी में इसका अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है कि '***किसी विशेष समय के दौरान एक विशेष समाज के लोगों के जीवन जीने का ढंग, विशेष रूप से उनके सामान्य रीति-रिवाज और मान्यता***' को संस्कृति कहा जा सकता है। संस्कृति वह नाम है जो किसी समाज में गहराई तक व्याप्त हो, जो उस समाज के सोचने-विचारने, खान-पान, बोल-चाल, गीत-नृत्य, कला संगीत आदि में

परिलक्षित होती है।हिंदी साहित्य में राष्ट्रकवि के नाम से जाने जानेवाले कवि **रामधारी सिंह 'दिनकर'** ने अपनी प्रसिद्ध रचना **'संस्कृति के चार अध्याय'** में संस्कृति पर गहन विचार किया है। उन्होंने अपने एक प्रसिद्ध निबंध **'संस्कृति क्या है'** में संस्कृति के लक्षणों को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि "*अंग्रेजी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज़ है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है* ।" पुन: आगे वे लिखते हैं कि "*संस्कृति ऐसी चीज नहीं कि जिसकी रचना दस-बीस या सौ-पचास वर्षों में की जा सकती हो।अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस तरह खाते-पीते, रहते-सहते, पढ़ते-लिखते, सोचते-समझते और राज-काज चलाते अथवा धर्म-कर्म करते हैं, उन सभी कार्यों से उनकी संस्कृति उत्पन्न होती है। ...असल में संस्कृति ज़िन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।*" [2]

परंपरा :

परंपरा के आभाव में कोई भी देश और समाज मानव सभ्यता के इतिहास में दूर तक चल नहीं सकता है। जो संस्कृति जितनी अधिक पुरानी होगी उसकी परम्पराएँ उतनी ही ज्यादा मजबूत होती हैं। परंपरा क्या है? परंपरा को अंग्रेजी में 'ट्रेडिशन' कहा जाता है। परंपरा एक सिद्धांत है,एक विश्वास, अभिनय का एक तरीका है जो किसी विशेष समाज या किसी विशेष समूह के लोगों ने सदियों से पालन करना जारी रखा है। राकेश जी ने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास की शुरुआत में ही पहाड़िया जनजातियों की एक प्रचलित

परंपरा को रेखांकित किया है- मांझी चुनने की परंपरा, जिससे यह ज्ञात होता है कि जनजाति समाज में मांझी का पद बहुत ही महत्व रखता है। रणेंद्र, सुधीर पाल द्वारा सम्पादित 'झारखण्ड इन्साइक्लोपीडिया, खंड-4' में भी विभिन्न जनजातीय समाज में मांझी की भूमिका एवं महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि "*गाँव का मुखिया मांझी कहलाता है। कई गाँवों के ऊपर सरदार होते हैं।... मांझी गाँव का अभिभावक होता है। उसकी सहायता के लिए प्रमाणिक एवं गोड़ाईत होते हैं। वह मांझी द्वारा दी गयी जिम्मेवारी को निभाता है। ग्राम पंचायत की बैठक बुलाता है। मांझी की अनुपस्थिति में बैठक की अध्यक्षता करता है। ग्राम के सभी व्यस्क पंचायत के सदस्य होते हैं। ग्राम पंचायत का फैसला बाध्यकारी होता है।*" [3]गाँव के मांझी का पद केवल वंशानुगत ही न होकर योग्यता पर आधारित होता है और इसके चयन में लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का भी पालन किया जाता है। गाँव का मांझी बनने के लिए उम्मीदवारों को तीन कठिन परीक्षाओं अथवा चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, उसमें सफल होने के बाद ही उस व्यक्ति को जनजातीय समाज का मांझी पद सौंपा जाता है, चाहे वह मांझी का ही पुत्र क्यों न हो।

"*राजमहल की पहाड़ियों पर बसे पहाड़िया समाज की हजारों वर्षों से चली आ रहीं परंपरा थी कि गाँव का मांझी (मुखिया) के ज्येष्ठ पुत्र को पिता के बाद मांझी का पद स्वतः प्राप्त हो जाना चाहिए ! इस 'चाहिए' में ही भेद था । . . . भावी मांझी को अपनी पात्रता सिद्ध करनी पड़ती थी । . . . मांझी के बेटों के*

परीक्षा में विफल होने पर गाँव का मांझी गाँव के किसी अन्य पुरुष का नाम भी प्रस्तावित कर सकता था। " [4]

अनेक मांझी के पुत्र के समान जबरा पहाड़िया उर्फ़ तिलका मांझी भी अपने गाँव 'सिंगारसी' के मांझी का पुत्र था। उसने भी अपने जनजाति समाज की परम्पराओं के अनुसार ही मांझी का पद ग्रहण किया था। अपनी पात्रता सिद्ध करने के लिए जबरा पहाड़िया ने तीन कठिन चुनौतियों को स्वीकार कर उसमें सफलता प्राप्त की थी।

"*जबरा पहाड़िया अपने गाँव का मांझी तब बना था, जब उसने पहाड़-पंचायत में तीन भेली गुड़ का बीड़ा उठाया था। गुड़ की ये तीन भेलियों तीन चुनौतीपूर्ण कार्य सम्पादित करने की शपथ उठाने का प्रतीक थीं। ऐसे कठिन कार्य, जिनसे गाँव-समाज का हित हो,जिनसे पंचायत की किसी विकट समस्या का समाधान निकल सके !* "[5]

पहाड़िया जनजातियों के इस परंपरा के अनुसार ही वह(तिलका मांझी) मांझी पद का सही उत्तराधिकारी तो था क्योंकि वह सुगना मांझी, 'अपने गाँव का सर्वोच्च व्यक्ति, ग्राम प्रधान और गाँव का मांझी का पुत्र था।' परन्तु उसे भी गाँव के पंचायत की उम्मीदों को पूरा करके ही अपनी योग्यता को साबित करना था।

" *जबरा, गाँव के मांझी सुगना का बेटा ! जबरा , बीस वर्ष का उठान लेता एक उत्साही युवक ! जबरा, जो परंपरा से मांझी ठान का उत्तराधिकारी तो*

था, परन्तु इस पद का अधिकारी बनने से पूर्व उसे पंचायत की उपेक्षाओं पर खरा उतारकर स्वयं को साबित करना था । " [6]

इस परंपरा के अनुसार मांझी पद का उत्तराधिकारी होने के लिए केवल बुद्धि और शक्ति का होना ही काफी नहीं था। मांझी बनने के लिए गाँव के पंचायतों को ऐसे व्यक्ति की खोज थी जिसमें बुद्धि और शक्ति के साथ-साथ कुछ अन्य गुण भी हों, जैसे निष्पक्ष दृष्टि होना, संगठनात्मक क्षमता होना, नेतृत्व निपुणता और चातुर्य आदि योग्यताएं। ये सब गुण एक व्यक्ति में उपस्थित हैं या नहीं, यह देखने के लिए पंचायत उसे अनेक कठिन कार्य सौंप देती है और अगर उसे उसमें सफलता प्राप्त हो तभी उसे मांझी, गाँव के मुखिया का पद सौंपा जाता है। पहाड़िया जनजाति समाज में मांझी अर्थात गाँव का मुखिया चुनने की प्रक्रिया में पंचायत की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ ही जनजातीय समाज अपने पूर्वजों से चली आ रही उन परम्परों को महत्व देते हुए उसका पूरी तरह से पालन करते दिखते हैं।

विवाह :

सभी मानव समाजों में विवाह के रस्मो-रिवाज अलग-अलग होते हैं। विभिन्न जनजातियों में भी यह अलग-अलग होते हैं।जनजातीय समाजों में अंतर्जातीय वैवाहिक सम्बन्ध नहीं होते हैं। पहाड़िया जनजाति समाज में भी अंतर्जातीय विवाह की प्रथा नहीं है, सामान्यत: विवाह अपने समाज के अंतर्गत ही होते हैं, परन्तु एक ही गोत्र में विवाह संबंधों को निषिद्ध किया गया है।

तिलका मांझी और रूपनी का विवाहिक सम्बन्ध इसका उदाहरण है। सुगना ने जबरा के लिए रूपनी का हाथ जंगी से माँगा था और इस प्रस्ताव को जंगी द्वारा सहर्ष स्वीकार कर लिया गया था। जंगी पहाड़िया (रूपनी का पिता) 'माल पहाड़िया' जनजाति का था और तिलका का पिता (सुगना मांझी) 'सौरिया पहाड़िया' जनजाति का था। जनजातीय समाज में ऊँच-नीच का, बड़े-छोटे का बहुत भेद नहीं होता हैं। पहाड़िया सामज में भी ऊंच-नीच का फर्क नहीं किया जाता है। इसलिए तिलका (एक मांझी का पुत्र) और रूपनी (एक सामान्य पहाड़िया की बेटी) का विवाह एक सामान्य बात होती है।

"मांझी का बेटा था जबरा । भावी मांझी।दुर्भिक्ष काल में नयी भैंस खरीद सकता था सुगना। घर-वर दोनों ही उत्तम थे । जंगी माल पहाड़िया था तो सुगना सौरिया पहाड़िया। गोत्र भिन्न थे ही, फिर सिंगारसी और सोनारी में दूरी भी अधिक नहीं थी।" [7]

तिलका का दोस्त फागुन पहाड़िया (एक सामान्य पहाड़िया का बेटा) और गेंदी (सोनारी गाँव के मांझी- गुमना मांझी की पुत्री) के विवाह-प्रसंग से भी यह बात साबित होती है।

पहाड़िया समाज में बाल विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। राकेश जी ने इसकी थोड़ी सी झलक दिखलायी है। जबरा पहाड़िया उर्फ़ तिलका मांझी और रूपनी के विवाह के समय रूपनी की उम्र लगभग तेरह वर्ष की थी और जबरा भी एक नवयुवक ही था।हिन्दू समाज के बाल विवाह की प्रथा से यह थोड़ा

भिन्न है क्योंकि दोनों युवक और युवती की रजामंदी के बाद ही उनका विवाह किया जाता है। तिलका और रूपनी तथा फागुन और गेंदी के विवाह इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उस समय पहाड़िया समाज में विवाह सामान्यत: बड़े-बुजुर्गों द्वारा तय किए जाते थे जिसे नवयुवक और नवयुवतियां सहर्ष स्वीकार कर लेते थे। परन्तु इसके साथ ही पहाड़िया जनजातीय समाज में प्रेम विवाह को भी पूरी तरह नकारा नहीं जाता है जिसका प्रमाण फागुन और गेंदी का विवाह है।

पर्व-त्यौहार :

भारतीय समाज एवं संस्कृति में पर्व-त्योहारों को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ये भारतीय संस्कृति की बहुत ही बड़ी विशेषताएं भी होती हैं। किसी भी मनुष्य को पर्व-त्यौहार एक सुख एवं आनंद की भावना प्रदान करता है। इन पर्व-त्योहारों के बिना समाज एक खुशहाल समाज नहीं बना सकता। आदिवासी समाजों में भी कुछ मुख्य त्यौहार होते हैं जो जनजाति समाज के लोग मनाते हैं। आदिवासियों के लिए प्रकृति उनका परिवेश होने के साथ साथ उनका आश्रय स्थल भी है और उपजीव्य भी, इसलिए हम उन्हें प्रकृतिपूजक भी कह सकते हैं। जैसे आदिवासियों का एक महत्वपूर्ण पर्व सरहुल है जिसमें भी पेड़ और प्रकृति की पूजा की जाती है। यह पर्व झारखण्ड, उड़ीसा, बिहार के कुछ आदिवासी क्षेत्रों में मनाया जाता है। इस त्यौहार को मनाने की विधि विभिन्न जनजातियों में अलग हो सकता है परन्तु मूल भावना एक ही होती है।

'हुल पहाड़िया' उपन्यास में राकेश जी ने पहाड़िया जनजाति के एक पर्व को हमारे सामने प्रस्तुत किया है 'बेझा तुन पर्व'। इस पर्व का अर्थ है तीन दिनों का शिकार-पर्व। आदिवासी समाज और शिकारी के बीच गहरा सम्बन्ध होता है। इस पर्व में केवल एक ही गाँव के ही नहीं, बल्कि पहाड़ के अन्य जनजातियों के सभी गाँव के युवकों और मर्दों को एक गाँव का मांझी पहाड़ पर आग जलाकर निमंत्रण भेजता है। अनेक गाँव के मांझियों के जुटने के बाद 'बेझा तुन' के लिए पंचायत द्वारा दिन तय किया जाता है। इस पर्व के शुरुआत में पहाड़िया जनजाति के धार्मिक विश्वासों एवं 'देवासी' (गाँव का पुजारी) द्वारा किए जाने वाले रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों एवं शिकार पर्व के अनुष्ठान के सम्पूर्ण विधि-विधान पर भी लेखक ने संक्षेप में प्रकाश डाला है -

" देवासी ने शगुन विचार कर पूजा योग्य जमीन चुनी थी । जमीन को साफ़ कर गोबर-पानी से लीपा था । लिपी-पुती ज़मीन पर सफ़ेद चावल की मोती परत बिछाई थी ।चावल की चौकोर चादर पर सफ़ेद कबूतर, लाल मुर्गे और बकरे की बलि दी गयी थी ।

शिकार के देवता को बलि देने के बाद सिन्दूर में लिपटा अंडा तोड़कर बलिदेवी पर हँड़िया का अर्घ्य दिया गया था ।

. . . देवासी ने हर टोली के नायक को बलि के रक्त से सने चावल दिए थे।

अगुआ व्यक्ति की पगड़ी के छोर में बंधा गया था, मुट्ठी भर पूजित चावल। एक विश्वास बंधा था पगड़ी में कि पूजा के बाद अच्छे शिकार उपलब्ध होंगे। अरण्य में विचरती शिकारी-टोली की हिंस्र पशुओं के आक्रमण और बुरी छायाओं से रक्षा करेगा यह मन्त्र-बिद्ध अनाज...एक आदिम विश्वास था।" [8]

आदिवासियों का जीवन लोक जीवन के साथ गहराई से जुड़ा होता है। इस लोक जीवन में लोक गीत, नृत्य आदि शामिल होते हैं। आदिवासी जीवन में लोक नृत्य, गीत, उत्सव-महोत्सव, मेला आदि उसके अनिवार्य अंग होते हैं, जिन्हें उससे अलग नहीं किया जा सकता है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास के लेखक राकेश कुमार सिंह ने भी अपने इस उपन्यास में पहाड़िया समाज में लोक गीतों, लोक नृत्य, लोक-त्योहारों, पर्व और उत्सवों की महत्ता और उनसे उनके जुड़ाव और लगाव को स्पष्टता से रेखांकित किया है। राकेश कुमार सिंह लिखते हैं- "*वृक्षों, नदियों, पहाड़ों और प्रकृति को पूजने वाला आदिवासी समाज किसी विशिष्ट अध्यात्मिकता की बनिस्बत कहीं गहरे तक जुड़ता है अपनी पातालगामी परम्पराओं से। नृत्य, गीत और मेले-त्यौंहारों से, पर्व और उत्सवों से, जो जन-जीवन को व्यापक प्रकृति से जोड़ते हैं। देशज विविधता, परन्तु कालगत एकता के सूत्र होते हैं ऐसे आयोजन!*" [9]

आदिवासी समाज में विभिन्न अवसरों पर लोक नृत्य और लोक गीतों का आयोजन किया जाता हैं जिसमें बड़ी संख्या में लोग भाग लेते हैं। और समूह से नृत्य करते हैं और गीत गाते हैं। पर्व-त्यौंहारों के अवसर पर आयोजित मेले-ठेलों में भी उनका आयोजन किया जाता हैं। जबरा जब अपने पिता सुगना

मांझी के साथ भैंस खरीदने 'बाघबुरु' के मेले में गयाथा तो वहां भी इसी प्रकार के एक सामूहिक नृत्य का आयोजन हुआ था जिसे जबरा देर तक मंत्रमुग्ध होकर देखता रहा। इस प्रसंग का मोहक वर्णन करते हुए लेखक लिखता है- *"बड़ा-सा गोल घेरा बनाये नाच रही थीं वनजाएं। हरेक के बाएं हाथ में दूसरी लड़की का हाथ था और दायां हाथ बगल वाली लड़की की कमर से लिपटा था। पारंपरिक वेश-सज्जा में सजी बालाएं घेरे से झूमर नाच रही थीं। गा रहीं थीं*

चेतन पूनो की रात में

मत बजाओ बांसुरी

ओ बांसुरी वाले, डरता है मन।

कहीं पति-गृह छोड़कर

भाग न पहुंचू पहाड़ पर

जहां बज रही

तेरी चितचोर बांसुरी।

कमल की पंखुड़ियों की भांति मांदल की अवरोहित धीमी थाप पर संकरा होता जाता था लड़कियों का वृत्त। उठान लेती मंदाल की तेज ताल के साथ उल्टे पाँव पीछे जाती वनजाओं के झूमर नाच के घेरे के बीच युवक मांदल बजा रहे थे।" [10]

अनादि काल के मानव अपने सुखों एवं दुखों की अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से करते रहे हैं। पहाड़िया आदिवासी भी गीतों के माध्यम से अपने सुखों एवं दुखो को वानू प्रदान करते हैं -

"*पहाड़ की ढाल पर मकई का खेत*

खेत की मेंड पर

बजाऊंगा बांसुरी

टप्प् - टिप्प चुएँगे महुवे के फूल

महुवा चुनते बजेगी तेरी पायल

गरजेंगे जब चैत के बादल

छुप जाना मेरी छाती में तुम " **11**

इसी तरह अन्य अवसरों पर भी गीतों में मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति हुयी हैं -

"*कोरो केमो कूटा हो गुड़िया*

किड़े पीठे ना

हेसो गति किड़े सात सागाड़

काना जारेत हेन हुई तान

केनो कूटा हो गुड़िया

किड़े पीठे नी...

(साग का वृक्ष ढह गया, जबकि भूख जानेलवा थी। यही साग खाकर जिए हम अन्यथा मृत्यु तय थी।)" [12]

युवा गृह :

आदिवासी समाज में गाँव के युवक-युवतिओं के लिए अलग-अलग गृह बनाया जाता था जिसमें विवाह से पूर्व वे रहा करते थे। इस गृह को अलग-अलग जनजातियों में अनेक प्रकार का नाम दिया जाता है। यह एक सार्वजनिक स्थान की तरह होता है जिसमें युवक और युवतियां अपने भावी जीवन के लिए आवश्यक पाठ सीखते हैं और प्रशिक्षण पाते हैं। यहीं पर उन्हें वरिष्ठ पीढ़ी द्वारा सामाजिक संस्कार, जीवन के लिए उपयोगी कलाओं लोक नृत्य और गीत, शिकार एवं कृषि के तौर तरीकों, कौशल, अस्त्र-शास्त्र परिचालन का प्रशिक्षण दिया जाता है। और उन्हें आदिवासी समाज का एक सोभाग्य नागरिक के रूप में दीक्षित किया जाता है। विवाह के पूर्व गाँव के किशोर-किशोरिया अपने परिवारों के साथ भोजन करने बाद रात बिताने के लिए यहाँ आ जाते हैं। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में भी राकेश जी ने पहाड़िया जनजातियों में युवा गृह होने की बात की है।-

"प्राय: एक झोपड़ी में जीवन काट देने वाले आदिवासी दंपती देह-भाषा और यौन-छंदों की समझ होने से पहले ही से अपने किशोर बच्चों को युवागृह में सोने भेजने लगते हैं।

युवागृह मात्र रात बिताने की जगह नहीं होती वरन् किशोर-किशोरियों के युवा प्रशिक्षण केंद्र भी होता हैं। अरण्य के भावी नागरिकों को सामाजिकता और भावी जीवन के पाठ पढ़ाने वाली शाला।

लड़कियों के लिए पृथक युवागृह होते हैं, जहाँ वे विवाह होने तक रात में सोने जाती हैं। लड़के जब तक विवाह कर अपनी पृथक झोपड़ी न खड़ी कर लें या लड़किया ब्याह कर घर से विदा न हो जाएँ, युवागृह ही उनके शयन स्थल होते हैं।"[13]

झारखण्ड क्षेत्र के पहाड़िया जनजाति पहाड़ों पर निवास करते हैं। पहाड़ ही उनका पेट भरता है। जंगल में वे कृषि कार्य भी करते है उस अनाज उपजाने का कार्य भी करते हैं साथ में पशु - पालन जैसे भैंस और गाय, बकरी की - दूध के लिए और सूअर, मूत्री आदि मांस के लिए। राकेश जी ने उपन्यास में कई बार उसका उल्लेख किया है। उधारणार्थ- "*गुमना पहाड़िया की भुअरी गाय चरने के लिए हांकी गयी तो सुबह की निकली गाय सांझ को वापस खूंटे पर नहीं लौटी थी, जबकि नयी ब्याई गाय थी।*"[14]"*सुगना मांझी के घर हमेशा एक दूधगर भैंस जरुर बंधी रहती थी।*"[15]

पहाड़ों के जंगलों में मिलने वाले 'महुआ' के फल तथा चावल से पहाड़िया आदिवासी अपने घरों में मदिरा बनाते हैं और उसे पिया करते हैं। उस मदीरा को 'हड़िया' कहा जाता हैं। पहाड़िया जैसे आदिवासी समुदायों में मदपान करना एक आम बात है तथा किसी महोत्सव और पर्व त्यौहार के अवसर पर सर्वश्रेष्ठ पेय माना जाता था। यह केवल झारखण्ड के आदिवासियों में ही नहीं बल्कि अन्य भारतीय आदिवासियों में भी मदपान को सर्वश्रेष्ठ पेय की मान्यता रही हैं। जनजातियों का जीवन सदियों से मेले के साथ जुड़ा हुआ है। यह मेला किसी एक गाँव या किसी एक जनजाति के लिए नहीं लगाया जाता था बल्कि आसपास के कई समाज और जनजातियों के लोग उसमें शामिल होते हैं। मेले का उपयोग सामाजिक व्यवस्था ते साथ-साथ आर्थिक वाणिज्य विनियम और सांस्कृतिक मनोरंजन के लिए भी होता है। राकेश जी ने भी अपने इस उपन्यास में मेले का वर्णन किया है- 'बाघबुरू मेला'। "*करम वृक्षों के कुंज में कंकरीली ललछौंह जमीन पर जुड़ता था बाघबुरू का मेला। दस दिनों तक चलने वाले इस वार्षिक मेले में दो इतवार पड़ते थे।... बाघबुरू के मेले में हर प्रकार के माल-मवेशी उतरते थे।*" [16]

जनजातियों के बीच विभिन्न प्रकार के मृतक-संस्कार किए जाते हैं। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में लेखक राकेश जी ने पहाड़िया जनजाति की कुछ मृतक-संस्कारों पर भी प्रकाश डाला है। शव के दाह-संस्कार के उपरान्त म्रीतक आत्मा की शान्ति के लिए सामान्यत: आदिवासी समाजों में भी श्राद्ध कर्म किया जाता है और उसमें भोज दिया जाता हैं। जिसमें गाँव समाज के लोग

शामिल होते हैं। मृतक जितना बड़ा और प्रभावशाली व्यक्ति होता हैं उसका श्राद्ध कर्म और भोज उतने ही बड़े पैमाने पर मनाने की प्रथा है। "*कोई सामान्य पहाड़िया मरता तो मात्र गाँव-गोत्र को भोज खिलाकर कर्मकाण्ड निपट जाता, परन्तु अपने गाँव का मांझी था गुमना पहाड़िया। पचासों गांवों की पंचायतों से जुड़ा रहता था वृद्ध मांझी।...अतः भोज के दिन ठट्ठ के ठट्ठ लोग सोनारी गाँव की और उमड़ पड़े थे।*" [17] *"... हत्या, आत्महत्या, सर्पदंश या किसी दुर्घटना में अस्वाभाविक मृत्यु होने पर मृतक के लिए विशेष कर्मकांड का विधान तो था नहीं। न शव को जलाना था, न ही ज़मीन में गाड़ना था। बस मृतक के शव को दृष्टि-क्षेत्र से परे,गाँव से दूर किसी दुर्गम स्थान पर छोड़ आना था।"*[18]सूतक समापन के दिन श्राद्ध मनाया जाता है जिसमें गाँव-समाज के शुद्धिकरण के लिए 'तेल-नहान' किया जाता है और पहाड़िया गोतिया-हितजनों को भोज दिया जाता हैं।

निष्कर्षत: राकेश कुमार जी ने अपने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में झारखण्ड क्षेत्र की संथाल परगना के राजमहल पहाड़ों में निवास करने वाले पहाड़िया जनजाति की परम्पराएँ, खान-पान, रहन- सहन, पर्व आदि उनके जीवन शैली की हल्की सी झलक प्रस्तुत करते हैं। अन्य आदिवासी जनजातियों के समान पहाड़ियों आदिवासी भी शिकार कर और जंगल से ही खाद्य सामग्री संग्रह कर अपना पेट भरते थे। इस जनजातीय समाज में विवाह, मेला, शिकार आदि को त्योहारों की तरह उत्सुकता से भी मनाया जाता था ।

(ख) पहाड़िया जनजाति की मूल्यगत संवेदना :

हर देश,हर समाज की अपनी संस्कृति होती है, और इस संस्कृति के साथ उनका मूल्यगत विश्वास और संवादनाएँ भी जुड़ी रहती हैं। विभिन्न जनजातियों के अपने अलग-अलग मूल्य होते हैं जिनका पालन उस समाज के सभी व्यक्ति श्रद्धा एवं विश्वास के साथ करते हैं। मूल्यगत विश्वास वैसे सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक मान्यताएं एवं नियम होते हैं जिनका पालन व्यक्ति अपना धर्म और कर्त्तव्य मानता है और जिसके पालन से व्यक्ति के सुचारू विकास के साथ-साथ आदर्श समाज का निर्माण और उसका सुचारू संचालन होता है। प्रेम, भाईचारा, परदुःख कातरता, दूसरों की मदद करना, सत्य बोलना, अहिंसा आदि ऐसे मूल्य हैं जो सभी देश, समाज एवं जनजातियों में सहज स्वीकार हैं तो अलग-अलग जनजातीय समाजों की कुछ विभिन्न प्रकार की भी मूल्यगत विश्वास एवं मान्यताएँ हो सकती हैं। आदिवासी समाजों में उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जीवन में मूल्य को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मूल्य क्या है? मूल्य को हम अंग्रेजी में 'वैल्यू' (value) कहते है। किसी विशेष संस्कृति या समाज के सदस्यों द्वारा साझा की जाने वाली महत्त्वपूर्ण और स्थायी मान्यताओं को हम मूल्य कह सकते हैं। अर्थात् किसी मान्यताएँ और आदर्शों के महत्त्वा और आवश्यकता को ही हम मूल्य कह सकते हैं। मूल्य हमें विकसित और बढ़ने में सहयोग प्रदान करते हैं। मूल्य अनेक प्रकार के जैसे व्यक्तिगत मूल्य, सामाजिक मूल्य, संगठनात्मक मूल्य आदि भी हो सकते हैं। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास के लेखक राकेश जी ने भी अपने

उपन्यास में पहाड़िया जनजातीय की कुछ मूल्यगत विशेषताओं पर प्रकाश में डाला है।

सबसे पहले पहाड़िया जनजाति कौन थे और कहाँ के निवासी थे? पहाड़िया जनजाति झारखण्ड क्षेत्र की एक आदिवासी जनजाति है। पहाड़िया झारखण्ड (पहले बिहार) क्षेत्र के संतालपरगना क्षेत्र में अधिवास करने वाली जनजातियों में से एक हैं । पहाड़िया राजमहल (जो कभी संतालपरगना, कभी दामिन-ए-कोह, कभी जंगलतराई के नाम से भी जाना जाता है) पहाड़ियों के चारों और रहते थे। पहाड़िया जनजाति को दो शाखाओं में बांटा गया है - माल पहाड़िया और सौरिया पहाड़िया। माल पहाड़िया राजमहल पहाड़ों के पश्चिम क्षेत्र में निवास करते थे और सौरिया पहाड़िया दक्षिण क्षेत्र की ओर निवास करते थे।

एक समाज में जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के पारिवारिक पृष्ठभूमि और मान्यताएँ होती हैं उसी प्रकार किसी आदिवासी क्षेत्र में बसने वाले विभिन्न गोत्र के जनजातियों की भी विभिन्न मूल्य होते हैं। आदिवासी समाज में विभिन्न जनजातियों को एक दूसरे का मान और सम्मान रखना उनकी एक महत्वपूर्ण मान्यता है। अगर दो गांवो के बीच कभी कोई समस्या हो तो उन समस्यों को सहमतिपूर्वक सुलझाने के लिए एक गाँव की तरफ से 'गिरह' (न्यौता) भेजा जाता है जिसका मान रखना दूसरे गाँव के मांझी के लिए अनिवार्य होता है। पंचायत बैठक में दोनों गांवों के मान को बचाने के लिए रास्ते निकाले जाते हैं जिसके लिए दोनों मांझियों भी सहमति जरुरी होती है।

इस तरह दोनों गांवो में एकता बनी रहती है। और दोनों गाँव एक दुसरे के सुख-दुःख में साथ निभाते रहते हैं। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में फागुन और गेंदी के प्रेम-प्रसंग में इसे देखा जा सकता है। फागुन सिंगारसी गाँव का युवक था और गेंदी सोनारी गाँव के मांझी की बेटी। दोनों को साथ में देखने के बाद सोनारी गाँव के मांझी गुमना पहाड़िया ने सिंगारसी गाँव के मांझी सुगना पहाड़िया को न्योता भेजा। "*सोनारी गाँव के मांझी गुमना पहाड़िया की बेटी है गेंदी। दस दिन हुए, सोनारी के कुछ लड़कों ने फागुन और गेंदी को महुरांव में देखा। लड़को ने फागुन को खदेड़ा। फागुन भाग निकला, पर बात फुट चुकी है। गुमना मांझी ने गिरह भेजा है।*" [19] और सुगना मांझी नेउस निमंत्रण को स्वीकार किया। '*यह एक इसी परंपरा थी, जिससे बंधा हुआ था पहाड़िया समाज ! दो गांवो में परस्पर असहमतियां भी हों - व्यक्तिगत, पारिवारिक या सामाजिक- फिर भी एक मांझी की गिरह का मान दूसरे मांझी को रखना पड़ता था। यह पहाड़िया समाज को आदिम परंपरा थी।*'[20] परन्तु अस्वस्थ होने के कारण इसके लिए वह स्वयं नहीं जा पाया था तो अपने पुत्र तिलका को भेज दिया। दोनों मांझियों के साथ सोनारी गाँव के सरदार इस समस्या का हल निकालने के लिए गाँव के बैठक में बैठते हैं। तिलका ने फागुन और गेंदी की शादी करवाने का प्रस्ताव दे कर दोनों गाँव के बीच एका बनाया रखा। अपने गाँव के मांझी और पंचायत में लिए गए निर्णय का मान रखना हर गाँववालों का कर्त्तव्य था। चाहे वे उससे सहमत हो या असहमत हो।"*निर्णय हो गया था। ऐसा निर्णय, जिससे दोनों पक्ष संतुष्ट हुए थे। फागुन के पिता धर्म को सहमति-असहमति कोई अर्थ नहीं रखती थी, जब*

उसके गाँव के मांझी ने ही इस विवाह को लादी गयी शर्तों के साथ अपनी स्वीकृति दे दी थी!"[21]

आदिवासी क्षेत्र में विभिन्न जनजातीय होते हैं जिनके विभिन्न गोत्र होते हैं। इसी प्रकार पहाड़िया जनजातीय में भी भिन्न गोत्र थे पर आपस में वे एकता, प्रेम और व्यवहार बनाये रखते थे। उनके बीच जंगल को लेकर या किसी विषय को लेकर अनबन नहीं रहता था। उनके बीच एकता स्थापित बनी रहती थी और एक दूसरे का मान रखना उनके लिए महत्त्वपूर्ण मान्यता एवं परंपरा थी। पर्व-त्योहारों के समय भी वे एक दूसरे से मिलते थे और साथ में मिलकर पर्व त्यौहार मनाते थे। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में पहाड़ियों का एक विशेष पर्व का उल्लेख है- 'बेझा-तुन पर्व'। इस 'बेझा-तुन पर्व' में पहाड़िया जनजातीय के अलग अलग गांवों के लगभग सभी युवक अपने मांझी के साथ तीन दिनों के लिए शिकार पर निकलते हैं। इस पर्व के लिए एक मांझी पहाड़ पर आग जलाकर दूसरे गाँव के मांझियों को निमंत्रण भेजता है और इस शिकार पर्व की तैयारी के लिए बैठक बुलाई जाती है। जब क्लीवलैंड पहाड़ियों से शिकार पर्व पर ले चलने के लिए कहता है तब उसे बात की ज्ञान नहीं होता है कि यह शिकार पर्व केवल एक गाँव के लिए नहीं होता है। "*शिकार-पर्व अकेला गाँव थोड़े मनाता है? ...जबरा को पहले पहाड़ पर आग जलाना होगा न साहेब। गिरह भेजना होगा। मांझी-परगनैत जुटेंगे, पंचायत में दिन तय होगा। फिर तीन दिन तक चलेगा शिकार।* " [22]

जिस प्रकार पहाड़िया जनजातीय के अनेक गाँव साथ में पर्व-त्यौहार मनाते हैं उसी प्रकार वे एक दूसरे के सुख और दुःख में भी साथ देते है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में जब सोनारी गाँव का मांझी- गुमना मांझी, का देहांत हो जाता है तब पहाड़िया गाँव में गोतिया-हितजनों को भोज देने का श्राद्ध-दिवस होता है जिसमें अनेक गाँव के मांझियों के साथ तिलका उर्फ़ जबरा भी शामिल था।साथ ही उसके कुछ साथिया भी सोनारी गाँव में जाते और उनके दुःख में साथ देते हैं।

पहाड़िया जनजाति संथाल जनजाति की तरह खेती-किसानी नहीं सीखना और करना चाहती थी। वे पहाड़ों में शिकार करके अपना पेट भरते थे। पहाड़ उनके लिए आजीविका का साधन था, जंगलों के खाद्य उत्पादों पर वे निर्भर रहते थे। वे खेती-किसानी करके अपना सम्मान खोना नहीं चाहते थे। परन्तु जब पहाड़ों पर दुर्भिक्ष अकाल पड़ा तब उन्हें गाँव का और अपना पेट भरने के लिए झूम-खेती शुरू करनी पड़ी थी। झाड़ियों को काटकर और उस क्षेत्र को जलाकर वे जंगल के पैचों को साफ करते थे और उन पैंचों पर उपभोग के लिए दाल और बाजरा जैसे विभिन्न प्रकार के अनाजों को उपजते थे। वे हल-बैल तो नहीं चलाते थे पर '*कुदाल से जमीन कोड़ कर बीज छींटते थे।*"[23] उनका मानना था कि जितना भूमि से प्राप्त होगा उतने में ही वे संतुष्ट होंगे।

जिस प्रकार गाँव के मुखिया और पंचायत की बात का पालन करना गाँव के लोगों का कर्त्तव्य होता था, जो एक महत्त्वपूर्ण सामजिक मूल्य था उसी प्रकार गाँव की सुरक्षा और गाँववालों की रक्षा का दायित्व मुखिया के ऊपर

निर्भर करता था, जिसका पालन करना उसका नैतिक मूल्य एवं राजनीतिक दायित्व होता था। 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के कर्मचारी जंगलतराई में बसने वालों से सस्ते दामों पर चावल खरीद रहे थे। "*चार आने में एक मन चावल खरीद रहे थे। छः मन तक चावल मात्र चवन्नी के मोल खरीद रहे थे जंगलतराई के आढ़तिए और गोलदार।*"[24] जंगलतराई में बसे पहाड़िया पैसों के पीछे पागल हो रहे थे। वे कम्पनी से चावल अंधाधुंध बेचकर अपना सारा भंडार खाली कर रहे थे और अपने रुपयों के साथ हाट जाकर अपने और अपने औरतों-बच्चों के लिए चूड़ियाँ, माला, कपड़े और कई नई वस्तुएँ आदि खरीद रहे थे। वे यह सोच नहीं पा रहे थे कि बुरे दिन में वे क्या खायेंगे। पहाड़ियों की इन हरकतों को देखकर "*पहाड़िया सरदार और मांझी गाँव-गाँव फिरते लोगों को समझाते रहते थे*"[25] चेतावनी देते थे। सुगना मांझी अपने गाँव-ज्वार के लोगों और अपने हित-परिचितों को सावधान करता रहता था।"*रुपये के पीछे पागल मत बनो। रूपया चबाने से पेट नहीं भरता। अनाज सहेज कर रखो। थोड़ा सुरक्षित भण्डार बचाकर रखो।*"[26] सुगना मांझी पहाड़ियों को चेतावनी देते हुए कहता है,"*सब जानने लगोगे। बूझोगे एक दिन सब कुछ।जब यही चावल खरीदने हाट जाओगे तो थैली का सारा रूपया खर्च करने पर भी उतना चावल नहीं खरीद सकोगे, जीतना बेचा है।*"[27]

इस तरह सुगना मांझी जैसे कुछ समझदार लोग पहाड़ियों के पागलपनती को बंद करने और बुरे दिन के लिए अपने चावल को बचाने की बात करते थे। उन्हें समझाते थे। 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' द्वारा पैसे की लालच

और इस चावल की लूट ने पहाड़िया लोगों की एका को तोड़ दिया था। आसन्न संकट को महसूस कर पहाड़िया सरदारों ने सभा बुलाया और कठोर निर्णय लोगों पर लाद दिया-

"*बिना जरुरत हाट में औरतों-बच्चों का घूमना बंद। जंगल के बाहर की रंग-बिरंगी चीजें खरीदना बंद। गोलमाल का धंधा करने वाले दलालों, गोलादारों और आढ़तियों का पहाड़िया गांवों में प्रवेश बंद। पहाड़-पंचायत के आदेशों का उल्लंघन करने वाले को कठोरतम दंड...बिटलाहा।*" [28]आदिवासी समाज का सबसे भयानक दंड था जाति से बहिष्कार और समाज से बहार हो जाना जिसे 'बिटलाहा' कहते हैं। इस तरह पहाड़िया सरदार और मांझिया अपने लोगों की एका को बनाए रखने और उन्हें भावी संकट से बछाने का प्रयास करते हुए उनके ऊपर कठोर नियम लाद दिया जिसका पालन नहीं करने का दंड था सामाजिक बहिष्कार। परन्तु उन कठिन नियामों के बावजूद वे अपने लोगों को संकट से नहीं बचा पाते हैं, सम्पूर्ण जंगलतराई में अकाल की भयानक मार पड़ती हैं।

पूरे जंगल में अकाल बुरी तरह से छा रही थी। जंगल के नदी तल भी सूखे पर रहे थे जिसके कारण घास-पात भी सूखे पर रहे थे। बिना घास के शाकाहारी मर रहे थे और मांसाहरिया मांस के बिना मर रहे थे। जंगलतराई में दुर्भिक्ष अकाल के समय पहाड़िया समाज भूखे रह रहे थे। पहाड़िया लोग अपने घर के गहने-बर्तन को बेचकर भी हाट से चावल नहीं खरीद पा रहे थे। सुगना मांझी की बात अक्षरस: साबित हो रही थी। कम्पनी वाले "*जो कभी रुपये में छः*

मन चावल खरीदता था,अब चार रुपये में मात्र एक सेर चावल तौल रहा था। ठगे गए थे वनवासी। हतबुद्धि वनवासी।" [29]पहाड़िया समाज अकाल से लड़ रहे थे, भूख से मरने की स्थिति में आ खड़े हो गए थे। जबरा उर्फ़ तिलका अपने गाँव और समाज को भूखे मरने से बचाने के लिए कंपनी के लूट के खजानों और डाक पर आक्रमण कर उसे लूटने की योजना बनाता है। वह अपने साथियों को कहता है - "*कम्पनी को हमारे दुःख-भूख से कोई मतलब नहीं। जब कम्पनी बेमुरौवत हमें लूटी है तो हम कम्पनी को अपने पहाड़ों से होकर आने-जाने का रास्ता क्यों दे ?... हम कम्पनी का खजाना लूटेंगे। यही उपाय है, जिससे अपने गाँव तो क्या, हर पहाड़िया पेट के लिए अनाज जुट सकता है।*"[30]"*राजमहल क्षेत्र से तेलियागढ़ी होते हुए ईस्ट इंडिया कम्पनी का खजाना और कम्पनी की डाक कलकत्ता और भागलपुर तक जाती थी।"* [31]

"*अंबर और सुलतानाबाद में कंपनी ने मालगुजारी की भारी वसूली की थी। वसूला गया राजस्व का यह धन भागलपुर भेजा जाने वाला था।*" [32]जबरा और उसके चार साथियों ने आक्रमण कर कम्पनी के उस खजाने को लूट लिया। कम्पनी के खजाने को लूटने के बाद वे 'बांसलोई नदी की रेत में उसे गाड़ देते हैं' और लोगों को रूपया ना देकर उनके जरूरतों जैसे अनाज, कपड़े, गाय, आदि देने लगे। इस प्रकार संकट के समय में अपने गाँव को बचाने के लिए जबरा रुपी मांझी अनैतिक कार्य करके भी अपने मुखिया के कर्तव्यों का पालन करता है और संकट के समय में अपने गांववालों की रक्षा करके एक आदर्श एवं मूल्य की स्थापना करता है।

आदिवासीपहाड़ों एवं जंगलों में स्वतंत्र रहते हैं। वे अपने ऊपर किसी का भी अधिकार स्वीकार नहीं करते हैं। पहाड़िया जनजातीय भी आदिकाल से स्वतंत्र रही थी। उन्हें अपने ऊपर अन्य किसी दूसरे की सत्ता स्वीकार मंज़ूर नहीं था। मुग़ल आये और चले भी गए परन्तु पहाड़िया उनके सामने कभी झुके नहीं। पहाड़िया जनजातीय का संघर्ष अंग्रेजों के आने के पूर्व से ही चला आ रहा था। "*जब भारत में आर्यों का प्रवेश हुआ उसके भी पहले से आजाद रहे थे पहाड़िया। भविष्य पुराण में वर्णित इस क्षेत्र 'नारी खंड' की अरण्य भूमि की आदि निवासी थीं पहाड़िया, भूईयां और खेतौरी जातियां। राजमहल, पाकुड़, दुमका, गिड्डा आदि-आदि भू-क्षेत्र पहाड़िया राज्य के अंतर्गत ही आते थे।*" [33] "*बहरी शक्तियों के जंगलतराई में प्रवेश के प्रबल विरोधी पहाड़िया लोगों ने महाभारत काल में अंगराज कर्ण के विरुद्ध भी विद्रोह का झंडा उठाया था।*"[34]अपने पुरखों से प्राप्त राज्यों पर दीकुओं का शासन पहाड़िया जनजाति को कभी भी स्वीकार नहीं था। वे अपने स्वतंत्रता को बनाए रखना चाहते थे। स्वतंत्रता उनके जीवन से दृढ़ता से जुड़ी हुई थी। जिसे वे किसी भी कीमत पर बनाये और बचाए रखना चाहते थे। आदिवासी समाज में केवल एक ही गाँव में नहीं बल्कि अनेक गाँवों के बीच भी गहरी एकता एवं भाईचारा बनी रहती है। उनके बीच जल, जंगल और जमीन को लेकर कभी वाद-विवाद नहीं होता था। जब भी कोई संकट आता था तो वे उसका सामना मिल जुलकर करते थे। इसी प्रकार अन्य आदिवासी समाज की भांति पहाड़िया जनजातीय समाज में भी एकता बनी रहती है। उनकी एकता की मिशाल 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में तब दिखाई पड़ती है जब वे एक साथ मिलकर अंग्रेजों का मुकाबला करते हैं।

पहाड़िया जनजाति सीधी, सरल और सहज थी जिसका फ़ायदा व्यापारिक बुद्धि से संपन्न अंग्रेज उठा रहे थे परन्तु अंत में अपनी भूमि, पहाड़, जल, जंगल और जमीन के लिए पहाड़िया एकजुट होकर कम्पनी के प्रति विद्रोह करते हैं भले ही कम्पनी के विरुद्ध इस लड़ाई में वे अपनी जान गवाँ बैठते हैं, लेकिन इस संघर्ष से पहाड़िया जनजाति की अपनी भूमि, पहाड़, जल, जंगल और जमीन के प्रति उनके असीम प्रेम एवं ममत्व की झलक मिलती है।

पहाड़िया जनजाति के लोग अपने दिए गए वचनों से कभी भी नहीं मुकरते थे। जब पहाड़िया जनजाति अपने शिकार पर्व के लिए निकले थे तब अगस्टस क्लीवलैंड भी उनका साथी बनकर गया था। शिकार पर्व के समय उसने जबरा उर्फ़ तिलका को अपना शिकार बना लिया था और उसे ब्लैकमेल किया।क्लीवलैंड ने तिलका को अपने साथ भागलपुर ले जाकर 'हिलरेंजर्स' का कमांडर बनने के लिए न्योता दिया, स्वीकार नहीं करने पर उसके बच्चे, पत्नी, घर, गाँव सबको नष्ट कर देने की धमकी दी। तिलका क्लीवलैंड से बात हार गया और वचन दिया कि वह भागलपुर जाकर 'हिलरेंजर्स' का कमांडर बनेगा। तिलका के इस वचन से पहाड़िया समाज हिल गया लेकिन पहाड़िया अपने दिए हुए वचन से पीछे नहीं हटते है। इसलिए उसकी पत्नी रूपनी उससे कहती है- *"अब क्या? शिकार में बात हरा है तू! मानना पड़ेगा। तू जा भागलपुर, लेकिन सुन ले तू, एक दिन तू जागेगा जरुर और जब निसा फटेगा तो यही पहाड़ तेरा साथ देगा तिलका! यही पहाड़िया तेरे हित-मित होंगे, वह मुंहझौंसा चिलमिली तेरा अपना कभी नहीं होगा।"*[35] पत्नी के समझाने, मन करने और ताना मारने

के बावजूद अपने वचन के पालन के लिए भारी मन के साथ तिलका भागलपुर चला जाता है।

निष्कर्षत: 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में लेखक ने पहाड़िया जनजातीय समाज और जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण मूल्यों पर प्रकाश डाला है। अन्य आदिवासी समाज के भाँती पहाड़िया समाज एक दूसरे के साथ प्रेम व्यवहार भाईचारा, सद्भाव रखते थे और पर्व-त्यौहार मिलकर मनाते थे, इसके साथ-साथ वे अन्य गांवों के सुख और दुःख में भी एक दूसरे का साझा बनते थे। प्रकृति से हर प्रकार का संसाधन पहाड़िया जनजाति को प्राप्त थी। प्रकृति जितना देती है उतने में वे संतुष्ट रहते थे। खेती-किसानी करना कभी सीखे नहीं थे और सीखना भी नहीं चाहते थे। उनके लिए उनके समाज का मान और स्वतंत्रता महत्त्वपूर्ण थी। राकेश जी ने इस उपन्यास में पहाड़िया जनजाति की अपने जल, जंगल और जमीन को बचाने की पूरी प्रयत्न और उनकी एकता का भी उल्लेख किया है।

*****

संदर्भ सूची :

1. कैंब्रिज डिक्शनरी
2. https://hindianswersonline.blogspot.com/2017/10
3. रणेंद्र, सुधीर पाल, 'झारखण्ड इन्साइक्लोपीडिया, खंड-4, पृ.
4. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 12
5. वही पृ. -12
6. वही पृ. -14
7. वही पृ. -79
8. वही पृ. -193
9. वही पृ. -76-77
10. वही पृ. -77
11. वही पृ.66-67
12. वही पृ. -70
13. वही पृ. -48
14. वही,, पृ. -59
15. वही पृ. -75
16. वही पृ. -76
17. वही पृ. - 180
18. वही पृ. - 181
19. वही, पृ. 19

20. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. -59

21. वही, पृ. -73

22. वही, पृ. -191

23. वही, पृ. -15

24. वही, पृ. -43

25. वही, पृ. -43

26. वही, पृ. -43

27. वही, पृ. -43

28. वही, पृ. -44

29. वही, पृ. -47

30. वही पृ. -50-51

31. वही पृ. -50-51

32. वही पृ. -52

33. वही पृ. -24

34. वही पृ. -25

35. वही पृ. -207

तृतीय अध्याय

ईस्ट इंडिया कम्पनी की विस्तार-नीति और तिलका मांझी का संघर्ष

(क) ईस्ट इंडिया कम्पनी का हस्तक्षेप और उसकी विस्तार नीति :

ईस्ट इंडिया कम्पनी को रानी एलिज़ाबेथ-I द्वारा रॉयल चार्टर, 31 दिसम्बर 1600 ई. को प्रदान किया गया था । ईस्ट इंडिया कम्पनी का गठन भारतीयएवं एशिया व्यापार में अपने हिस्से का दावा करने के लिए ब्रिटिश द्वारा किया गया था । इस रॉयल चार्टर के अनुसार ब्रिटिशों को हिन्द महासागर के पूर्वी हिस्सा पर वाणिज्य का एकाधिकार दिया गया ।

" *मूल रूप से इसका उद्देश्य था ईस्ट इंडिया कम्पनी को पूर्वी व्यापारिक क्षेत्र में डच कंपनियों के मुकाबले उतारा जाए क्योंकि यह यूरोप में मसाले पहुंचाकर मालामाल हो जाने का रास्ता था । इस नई कम्पनी को इंग्लैंड और एशिया के बीच व्यापारकरने का और इसके लिए शक्ति का इस्तेमाल करने का एकाधिकार प्रदान किया गया । इन अधिकारों से लैस होने के बाद कम्पनी ने शुरुआती कदम उठाए । उसने औपचारिक रूप से 1613 में अपनी व्यापारिक गतिविधियां शुरू कर दी और धीरे धीरे अपना हस्तक्षेप हर जगह बढ़ाने लगी ।*"[1]

अठारवीं शताब्दी में भारत एक कायापलट स्थिति में था । एक तरफ क्षेत्रिया राज्यों के उदय और शक्तिशाली मुग़ल साम्राज्य के पतन के साथ, सत्ता का विकेन्द्रीयकरन हो रहा था । दूसरी और ब्रिटिश साम्राज्य ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की गठन की जिससे वाणिज्य में एकाधिकार प्राप्त हो गयी ।

ब्रिटिश के आगमन से पूर्व भारत में व्यापार के लिए पुर्तगाली और डच आ चुके थे। 1608 ई. में कम्पनी का पहला जहाज सूरत में आ पहुँचा था । तीनों के बीच त्रिकोणीय प्रतियोगिता होने लगी थी जिसमें 1610 ई. में पुर्तगालियों को सूरत में हराकर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपना पहला आउट पोस्ट बनाया था जो भारत में ब्रिटिश की उपस्थिति का पहला सबूत हैं । इसके उपरान्त भारतीय महाद्वीपों में ब्रिटिशों का नियंत्रण बहुत तेजी से बढ़ता गया । 1612 ई. में कम्पनी ने गुजरात में एक व्यापारिक पद की स्थापना की । सन् 1614 ई. में एक बेहतर राजनीतिक - प्रशासनिक सम्बन्ध बनाने के लिए जेम्स I के कहने पर सर थॉमस रो, मुग़ल बादशाह जहाँगीर के दरबार पर गया । वह मुग़ल साम्राज्य के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करने के निर्देश के साथ गया कि कम्पनी को सूरत में एक कारखाना बनाने की आज्ञा दी जाए । बादशाह जहाँगीर के आज्ञा से ही कम्पनी ने अपना पहला गोदाम बनाना शुरू किया । इसके बाद सन् 1639 ई. में मद्रास, 1668 में बम्बई तथा सन् 1690 ई. में कलकत्ता की स्थापना हुई और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इन स्थापना पर अपने गोदाम बनाये जो आगे चलकर व्यापारिक एवं राजनितिक केंद्र के रूप में विकसित हुई ।

"In 1614, Sir Thomas Roe was instructed by James-I to visit the court of Jahangir, the Mughal Emperor, to built a better politico-administrative relationship. Of course, he was instructed to arrange a commercial treaty and secure sites of the East India Company for commercial agencies - 'factories' as they were called. Sir Thomas was succeeded in getting permission from Jahangir. Therefore, the Company set up their factory at Ahmedabad, Broach and Agra for the first time. ... Again the British obtained Bombay from Charles II in 1661 and converted into a flourishing center of trade by 1668. With their better business interest, the villages of Sutanati, Kalikata and Gobindpore were amalgamated into a single area and named 'Calcutta' (now Kolkata)."[2]

जब तक मुग़ल साम्राज्य मजबूत रहा तब तक ईस्ट इंडिया कम्पनी मुग़ल बादशाहों के रहमो करम पर केवल व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न रही। परन्तु सन 1706 ई. में मुग़ल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी उतने सशक्त, बलशाली एवं दूरदृष्टि वाले सिद्ध नहीं हुए जिससे की वे सम्पूर्ण मुग़ल साम्राज्य को एक रख सकें। केन्द्रीय शक्ति के कमजोर पड़ते ही सम्पूर्ण साम्राज्य में एक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस राजनीतिक अस्थिरता का फायदा उठाकर कई क्षेत्रीय शासकों ने

मुग़ल बादशाह से बगावत कर स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली। उन क्षेत्रीय शासकों में भी आपसी सहयोग, विश्वास का अभाव था। वे परस्पर एक दुसरे को नीचा दिखाने और गिराने का अवसर खोजते रहते थे। भारत की इस राजनीतिक अस्थिरता ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए एक सुनहरा अवसर प्रदान किया जिसमें वे अपने व्यापारिक हितों को और ज्यादा पखान चढ़ाने के लिए भारतीय राजनीति में सीधा हस्तक्षेप करने का दुस्साहस करते हैं और उसमें भेनकेन प्रकारेण छल-बल-कल से सफल भी हो जाते हैं। परिणाम स्वरुप एक व्यापारिक कम्पनी भारत की भाग्यविधाता बन जाती है और भारत पर दो सौ सैलून की गुलामी थोप दी जाती हैं।

"1750 के दशक में, कम्पनी और बंगाल के स्थानीय मुग़ल शासक के बीच टकराव का एक बड़ा मुद्दा बन गया, जिसके कारण भारत में साम्राज्यिक शक्ति के रूप में कम्पनी के उदय का आधार तैयार हुआ ।... एशिया से अंग्रेजों के आयातों में लगभग 60 प्रतिशत भाग बंगाल के मालों का हो चुका था । कम्पनी इस स्थिति की ओर धीरे - धीरे बढ़ती आ रही थी । 1690 में औरंगज़ेब के फ़रमान ने 3000 रूपए के वार्षिक अदायगी के बदले कम्पनी को बंगाल में शुल्कमुफ्त व्यापार का अधिकार दे दिया था । 1690 में कलकत्ता की नींव पड़ी ⋯ जिसके बाद कम्पनी को कोलिकाता, सूतानाटी और गोविंदपुर नाम के तीन गांवो की ज़मींदारी का अधिकार मिला ।"[3]

शुरुआत में ईस्ट इंडिया कम्पनी केवल व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में ही रुचि रखती थी । परन्तु उस समय भारत कई राज्यों में विभाजित था

जिसके अलग-अलग राजा थे। कम्पनी को विभिन्न शासकों, राजाओं, साम्राटों के साथ सामान्य व्यापारिक गतिविधियों को पूरा करने में कई नुक्सान हुए थे। भारतीय शासकों के साथ सम्पूर्ण मुकाबला के द्वारा सन् 1769 ई. तक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में यूरोपीय व्यापार पर नियंत्रण हासिल किया । अतः उनके आर्थिक हित से भारत में रानी के प्रशासन की वृद्धि हुई ।

"The Company decided to take advantage of the non-cooperation, lack of unity and petty jealousies of the Indian kings to further their business interest in the sub-continent. And sooner or later Culcatta became a trading center for the East India Company. Thus, their economic interest at the first part of the British settlement caused to increase the administration of the Queen in India. " [4]

मुग़ल साम्राज्य के शासक औरंगज़ेब के मृत्यु के पश्चात राज्य की स्थिति में बदलाव आया, अस्थिरता की स्थिति बन गयी थी और जब 1713 में फर्रुखसियार राजा बना तब उसने ईस्ट इंडिया कम्पनी को एक फ़रमान से अनुदान दिया जिससे कम्पनी को शुल्कमुक्त व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हुआ और पूर्वी तट पर अपने पोस्ट को और मज़बूत बनाया । इसके साथ "*कलकत्ता के आसपास के अड़तीस गाँवों को लगान पर लेने और शाही टकसाल का उपयोग करने का अधिकार दे दिया ।*" [5]लेकिन स्वतंत्र शासक और बंगाल का सर्वप्रथम नवाब मुर्शिद कुली खां ने फर्रुखसियार के फरमानों को

अस्वीकार किया । शुल्कमुक्त व्यापार के नियम को कम्पनी के अधिकारियों के व्यापार पर लागू करने से मना कर दिया, अड़तीस गांवो को खरीदने तथा शाही टकसाल का उपयोग करने के विशेषाधिकार को भी मानने से इंकार कर दिया । इस कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी और बंगाल के नवाब के बीच 1717 से ही टकराव बढ़ता जा रहा था ।

सन् 1756 में सिराजुद्दौला नवाब बना तब उसने कम्पनी के निजी व्यापार को पूरी तरह से रोक दिया । *"1756 में अपने राज्याभिषेकके बाद सिराज ने अंग्रेजों को आदेश दिया कि वे सभी किलेबंदियां समाप्त करे जो उन्होंने चंदरनगर में फ्रांसीसी कम्पनी के संभावित हमले से बचने के लिए बनाई थी ... ।"* [6]शुरुआत से ही कम्पनी बंगाल पर कब्ज़ा करना चाहती थी क्योंकि बंगाल बहुत ही बड़ा धनी और उपजाऊ प्रान्त था। कम्पनी के बंगाल पर अधिकार प्राप्ति से कम्पनी अधिक से अधिक धन कमा सकती थी। मुग़ल बादशाह के फरमान के अनुसार कम्पनी को निशुल्क व्यापार करने की छूट (ईस्ट इंडिया कम्पनी) थी परन्तु इस दस्तक का दुरुपयोग करना कम्पनी ने शुरू कर दिया। उस फरमान के आड़ में कम्पनी के अधिकारी अपने व्यक्तिगत व्यापार भी शुल्कमुक्त करने लगे थे जिसके कारण नवाब के आर्थिक नुकसान हो रहा था। नवाब सिराजुद्दौला ने कम्पनी के व्यापारिक सुविधाओं के दुरुपयोग को पूरी तरह से रोका। कम्पनी ने सिराजुद्दौला के रोक और चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया तो कलकत्ता पर सिराजुद्दौला ने हमला किया और उसपर अधिकार प्राप्त कर लिया। इसके उपरांत कम्पनी ने नवाब से लड़ने की योजना

बनाई और सन् 1757 में कर्नल रोबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौलाह और उसकी सेना को **पलासी युद्ध** में हरा दिया। कम्पनी को बंगाल के नवाब के रूप में ऐसा व्यक्ति चाहिए था जो उनके इशारों पे राज करे, इसलिए उन्होंने नवाब के सेनापति मीर जाफ़र को गद्दी पर बैठाने का लालच दिखाया और नवाब सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड़यंत्र रचा। "*महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि एक गठजोड़ था जिसका परिणाम पलासी की लड़ाई (जून 1757) था, जिसमें क्लाइव ने अंततः सिरज को हरा दिया। यह एक झड़प से अधिक शायद ही कुछ रहा होगा, क्योंकि नवाबी सेना का सबसे बड़ा भाग मीर ज़ाफर की कमान में निष्क्रिय रहा। लेकिन इसका गहरा राजनीतिक प्रभाव पड़ा, क्योंकि भगोड़े सिराज को जल्द ही गिरफ़्तार करके मृत्युदंड दे दिया गया और नया नवाब मीर ज़ाफर अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली बन गया। इस तरह पलासी की लड़ाई (1757) भरात में अंग्रेजों के ईस्ट इंडिया कम्पनी के राजनीतिक वर्चस्व का आरम्भ बिंदु था।*" [7]

इस तरह से अंग्रेजों के ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत के राजनैतिक ढाँचे में औपचारिक रूप से प्रवेश कर लिया। बंगाल का राजनीतिक अधिकार कम्पनी के हाथों आ गया। युद्ध के पश्चात अंग्रेजों ने मीर ज़ाफर को बंगाल का नवाब तो बनाया लेकिन कम्पनी का प्रभाव भारी पड़ा क्योंकि कम्पनी द्वारा ही उसे नवाब का पद मिला था और इसका लाभ भी कम्पनी ने उठाया जिससे उनका साम्राज्य विस्तार होता गया। वे अपना साम्राज्य पूरी तरह स्थापित करने और विस्तृत करने में लग गए। पलासी युद्ध से कम्पनी को राजनीतिक

और आर्थिक स्तरों पर बहुत अधिक लाभ प्राप्त हुआ। **शेखर बंद्योपाध्याय** ने अपनी पुस्तक **'पलासी से विभाजन तक और उसके बाद आधुनिक भारत का इतिहास में'** में पलासी युद्ध के बाद कम्पनी द्वारा प्राप्त लाभों का विवरण कुछ इस प्रकार दिया है - "*उसके बाद जो कुछ हुआ उसे अक्सर "पलासी लूट" कहा जाता है।युद्ध के तुरंत बाद अंग्रेज सेना और नौसेना में हरेक को अपने सदस्यों में बांटने के लिए 2,75,000 पाउंड की बड़ी राशि मिली। इसके अलावा 1757 और 1760 के बीच कम्पनी को मीर ज़ाफर से 2.25 करोड़ रूपए मिले; स्वयं क्लाइव को 1759 में 34,567 पाउंड कीमत की एक निजी जागीर मिली।··· 1757 से पहले बंगाल में अंग्रेजों के व्यापार के लिए धन अधिकतर इंग्लैंड से आयातित कीमती धातुओं से मिलता था। लेकिन उस साल के बाद न केवल इन धातुओं का आयात पूरी तरह रुक गया,बल्कि बंगाल से कीमती धातुओं को चीन तथा भारत के दूसरे भागों को भेजा जाने लगा, जिससे अंग्रेज कम्पनी को अपने यूरोपीय प्रतियोगियों पर श्रेष्ठता प्राप्त हुई। दूसरी ओर कम्पनी के अधिकारियों के लिए पलासी ने निजी संपत्ति जमा करने के रास्ते खोल दिए- न केवल सीधे-सीधे बलप्रयोग द्वारा, बल्कि निजी व्यापार के लिए दस्तकों के अनियंत्रित दुरुपयोग के द्वारा भी।*" [8] कुछ इसी प्रकार का विवरण पुस्तक **'भारत का इतिहास 1707 से 1857 तक'** की लेखिका **लक्ष्मी सुब्रमणयण** ने अपने प्रस्तुत पुस्तक में दिया है - "*इसके बाद लूटमार का बाजार गर्म हो गया।युद्ध के तुरंत बाद अंग्रेज सेना और नौसेना को अपने सदस्यों के बीच बांटने के लिए 2,75,000 पाउंड की मोती रकम प्राप्त हुई। इसके अलावा,आने वाले वर्षों में, कम्पनी को मीर जाफर की ओर से 22.5 मिलियन रुपये मिले,*

और क्लाइव को 34,567 पाउंड की कीमत की निजी जागीर प्राप्त हुई। उल्लेखनीय है कि पलासी युद्ध के बाद यूरोपीय निजी व्यापारियों और कम्पनी कर्मचारियों के व्यापारिक संभावनाएं पूरी तरह से बदल गई। ये वे लोग थे जिन्हें नियमों की धज्जियां उड़ाने, सस्ता माल खरीद कर महँगा बेचने और जिंसों की जमाखोरी करने की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी। पलासी ने जबरन वसूली और कभी कम्पनी और बंगाल के नवाबों के बीच विवाद का मुद्दा रहे दस्तक की अवहेलना के माध्यम से असीमित लाभों और निजी तौर पर माल बटोरने के दरवाजे खोल दिए। कम्पनी ने अपने लिए नए अधिकार प्राप्त कर लिए। उद्धारणार्थ, अपनी टकसाल मुद्रा ढालना और खासतौर से चौबीस परगना का राजस्व कलकत्ता के दक्षिण तक बढ़ा दिया गया।" [9]

पलासी युद्ध के बाद कम्पनी की लूट बढती गयी और बंगाल का नवाब मीर ज़ाफर को कम्पनी का लोभ पूरा करने में असफल होता गया जिसके कारण मीर ज़ाफर के दामाद मीर कासिम को उसके जगह सन् 1760 में नवाब के पद पर बैठा दिया गया। शुरुआत में मीर कासिम ने कम्पनी के सामने आये समस्यायों का हल निकला और 'बर्दवान, चित्तगांव और मिदनापुर की सीमाओं को' भी कम्पनी को दे दिया था। लेकिन कम्पनी द्वारा 1717 ई. के फरमान और दस्तक का दुरुपयोग बढ़ने के कारण मीर कासिम ने कम्पनी द्वारा व्यापारिक दुरुपयोग को रोकने की पूरी कोशिश की और विशेषाधिकार भी प्राप्त करने की कोशिश की। परन्तु कम्पनी ने उसे नवाब के पद से हटा कर दुबारा मीर ज़ाफर को बैठा दिया और मीर कासिम बंगाल से भाग गया। मीर

कासिम अवध के नवाब शुजाउद्दौला और मुग़ल बादशाह आलम द्वितीय के साथ मिलकर कम्पनी से लड़ने की योजना बनाया। अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने मीर कासिम का साथ देना तभी मंजूर किया जब उसने सफलता के बाद नवाब शुजाउद्दौला को बिहार और अपने खजाने देने का वादा किया। "*मीर कासिम भागकर उसके पास जब शरण के लिए पहुंचा,तो लम्बी और टेढ़ी वार्ताओं के बाद ही दोनों के बीच अंग्रेजों के विरुद्ध कार्यवाई पर सहमति हुई; शुजा का समर्थन तभी मिला जब उससे सफलता के बाद बिहार और उसका खज़ाना, और साथ में 3करोड़ रूपए देने का वादा किया गया।*"[10] सन् 1764 ई. में सार्वभौम सत्ता के लिए कम्पनी और *मीर कासिम*, बंगाल के नवाब के बीच संघर्ष शुरू हुआ था। इस युद्ध को 'बक्सर का युद्ध' कहा जाता है। परन्तु दुर्भाग्य से इस लड़ाई में भी कम्पनी की जीत हुई और परिणामस्वरूप कम्पनी के हाथ भारत की राज-सत्ता ओर अधिक प्राप्त हो गई और बंगाल, उड़ीसा और बिहार की दीवानी भी अंग्रेजों के हाथ चली आई। इतिहासकार **लक्ष्मीसुब्रमणयण** ने अपनी पुस्तक **'भारत का इतिहास 1707 से 1857 तक'** में लिखा है कि - "*लेकिन युद्ध का परिणाम अधिक महत्वपूर्ण है कि इसके कारण राजनैतिक ढाँचे और कम्पनी के राजनैतिक स्तर में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। एक व्यापारिक कम्पनी रातों रात एक राज्यक्षेत्र की स्वामी बन बैठी और उसे राजस्व प्राप्त करने के अधिकार मिल गए। इसके बाद इलाहाबाद की संधि (1765) अस्तित्व में आई जिसके तहत मुग़ल सम्राट ने कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी (राजस्व वसूली अधिकार) दे दी और उन्हें मुर्शिदाबाद दरबार में ब्रिटिश रेजिडेंट रखने की अनुमति भी दे दी। राजस्व*

वसूली अधिकार ने कम्पनी को वित्तीय आधार दिया जिसके कारण उसे विकास और राजनैतिक गठजोड़ में शामिल कर लिया गया - सहायक संधि के अंतर्गत कम्पनी को अवध पांच मिलियन रूपए का भुगतान करने पर सहमत हो गया और उसने यह दायित्व भी लिया कि वह कम्पनी की सीमओं की रक्षा करेगा, लखनऊ में एक ब्रिटिश रेजिडेंट रखेगा और कम्पनी को शुल्क मुक्त व्यापार अधिकार देगा। एक ही झटके में कम्पनी ने एक ऐसा क्षेत्र हासिल कर लिया जहाँ से काफी आय हो सकती थी। साथ ही, उसने बंगाल की राजनैतिक संरचना निजामत में अपने पाँव मजबूती से जमा लिए तथा अवध को भी अपने प्रभाव-क्षेत्र में ले लिया।" [11]

इस प्रकार ये दो युद्धों - सन् 1757 का पलासी युद्ध और सन् 1764 का बक्सर का युद्ध बंगाल के नवाब और कम्पनी के बीच हुआ जिसमें कम्पनी की विजय हुई। नवाब के साथ लड़ाई में विजय प्राप्ति के बाद कम्पनी जो पहले केवल व्यवसाय करने के लिए भारत आई थी, उनके हाथ भारत की राजनैतिक शक्ति आ गयी। और भारत में ब्रिटिश शासन की नींव पड़ी। अब कम्पनी केवल व्यावसायिक क्षेत्रों और कृषि भूमि पर ही नहीं बल्कि जंगलों में भी अपना राज फैलाने की कोशिश करने लगी। बंगाल, बिहार, झारखण्ड आदि के जंगल, आदिवासियों के घर थे। आदिवासी स्वतंत्र रहते आये थे। ब्रिटिश राज से पहले भी अनेक राजा आए और गए परन्तु उनसे उनका ज़मीन कभी छीना नहीं गया था। वे अपने जीवन और ज़मीन-भूमि के स्वयं मालिक होते थे।

परन्तु दीवानी प्राप्ति के बाद ब्रिटिश कम्पनी ने तीन राज्यों- बंगाल, बिहार और उड़ीसा राज्यों के कृषि भूमि क्षेत्र के अलाव सभी जंगली क्षेत्रों में भी अपना राजस्व वसूलने की प्रक्रिया प्रारंभ की। इन राज्यों में रहने वाले आदिवासियों पर अंग्रेजों का दमन-शोषण इस दीवानी भी प्राप्ति के बाद ही आरम्भ हुआ । और अशिक्षित, भोले तथा पिछड़ा माने जाने वाले आदिवासियों का शारीरिक और मानसिक रूप से शोषण कम्पनी द्वारा शुरू हुआ।

कम्पनी आदिवासियों के भूमि पर कब्ज़ा कर उनसे ही निर्यात के लिए खेती करवाने लगी थी । सरल और भोले आदिवासी अपनी ही ज़मीनों में श्रमिकों की स्थिति में रहने लगे ।

जंगल में कारखानों (गोदामों) के निर्माण के कारण आदिवासी अपने पारंपरिक निवास स्थान और घरों से विस्थापित होने लगे तथा जंगल के विनाश के कारण शिकार की उपलब्धता भी कम होती गयी । अंग्रेजों ने उनके ज़मीन ही नहीं उनके घर, जंगल, शिकार के अधिकार सब कुछ छीन लिया था।

इन आदिवासी समुदायों के बीच झारखण्ड क्षेत्र के पहाड़ों में निवास करने वाले आदिवासियों में पहाड़िया जनजाति भी एक थी । पहाड़ ही उनका गाँव था, घर था, कम्पनी ने धीरे-धीरे उनके पहाड़ों और जंगलों को घेरना और उस पर कब्जा करना प्रारंभ कर दिया और आदिवासियों को टैक्स देने और उनके लिए व्यावसायिक कृषि के लिए मजबूर किया। इस प्रकार अन्य आदिवासियों के साथ पहाड़िया लोगों को भी कम्पनी के शोषण का सामना

करना पड़ा और सहना पड़ा । कम्पनी के अपना क्षेत्र उत्तर तक आगे बढ़ाने की चाह के कारण उनका पहाड़ियों पर कब्ज़ा करना अनिवार्य था । अंग्रेजों ने अनेक प्रकार से पहाड़ियों से उनकी भूमि, घर, गाँव, जंगल आदि को हड़पने की पूरी कोशिश की । कम्पनी ज़मींदारों, राजाओं से कर ले ही रही थी, साथ ही इन पहाड़ियों पर भी कर का बोझ लाद दिया गया । यह कहा जा सकता है कि पहाड़ियों से कम्पनी पैसा कमा रही थी, उन्हें लूट रही थी । लेकिन पहाड़िया इस कर व्यवस्था का विरोध करते हैं क्योंकि जिस ज़मीन पर वे रहते थे वह उनकी परंपरागत भूमि थी,वह कम्पनी की अपनी भूमि नहीं थी । पहाड़ियों के इस विद्रोह की समस्या से निपटने के लिए **'वारेन हेस्टिंग्स'** को उस क्षेत्र का **गवर्नर जनरल** नियुक्त किया गया और वारेन हेस्टिंग्स ने पहाड़िया विद्रोहियों से लड़ने के लिए **कैप्टेन ब्रूक** को ढेर सैनिकों के साथ जंगल की ओर भेजा ।

अंग्रेजों ने पहाड़ियों से छल-कपट और पैसे की लालच से उनसे उनका अनाज सस्ते में खरीद कर जमा कर लिया। और अकाल पड़ने पर उसी अनाज को बेचने लगे। अनाज को अंग्रेज कम दाम में खरीदकर तिगुना-चौगुना दाम बढ़ाकर अकाल के समय उन्हीं पहाड़िया लोगों को बेचने लगे । अंग्रेजों को पता था कि इन आदिवासियों के पास अनाज का प्रयाप्त भंडार नहीं है और न ही खरीदने के लिए इतना रूपया है जिससे उनका पेट अकाल के पूरे समय तक भरता रहे। इस प्रकार कम्पनी आदिवासियों को भूखा मार देना चाहती थी, पहाड़ियों को भी अंग्रेज भूखा मरने दे रहे थे ।

" *कम्पनी चार आने में छः मन तक चावल खरीदती थी ।अकाल के समय वही चावल चार आने में मात्र एक सेर की दर पर बेचा जा रहा था"* [12]

" *चवन्नी के खेल ने जंगल तराई को लूट लिया था। भोले और आदूरदर्शी वनवासी स्वेच्छा से लुटे थे ।*" [13]

अकाल के इस विषम परिस्थितियों में भूखे करना और मान खोना तिलका को मंजूर नहीं था। अनाज एवं शिकार की अनुपलब्धता मजबूर कर रही थी कि अपने गाँव वालों और पहाड़िया भाईयों को बचाने के लिए कुछ ठोस कदम उठाये। अंत में परिस्थितियों से विवश होकर और अपने कुछ साथियों की मदद से कम्पनी का खजाना लूटने की भोजन बनता है और उसे सफलता के साथ कार्यान्वित भी करता है। परन्तु उस लूटे हुए पैसे से वह अनाज खरीदता है और अकाल में भूखे मर रहे अपने पहाड़िया भाइयों के बीच बाँट देता है।

अकाल में भूखे मरने की स्थिति में आकर पहाड़िया जनजाति अंग्रेजों के माल लूटने लगे। वे भूखे मरकर अपना मान खोना नहीं चाहते थे । इस प्रकार पहाड़ियों को चोरी-डकैती अंग्रेजों ने सिखायी कहा जा सकता है । अपने पूरे गाँव के लोगों को भूखे मरने से बचाने के लिए उन्हें डकेती करनी पड़ी थी ।

अंग्रेजों का पहाड़ियों का अनाज कम दाम में खरीदना, उसका जमाखोरी करना और अकाल के समय ज़्यादा दाम में बेचना और दुर्भिक्ष के कारण पहाड़ियों की स्थिति पहले से भी ज्यादा गिर गयी थी । अब केवल

शिकारी से ही उनका पेट नहीं भर पाता था। अकाल की वजह से जंगल में शिकार की उपलब्धता भी कम हो गई थी। वे डकैती करने को विवश हो गए । अंग्रेजों के कहने पर अपने स्वभाव और संस्कारों के विपरीत उन्हें भी किसानी सीखनी पड़ी, अपन पेट भरने के लिए कमाना अनिवार्य हो गया था । किसानी करना सिखाकर अंग्रेज पहाड़ियों की केवल नाम की सहायता कर रहे थे। उससे उनका मूल मकसद कृषि भूमि पर टैक्स वसूलना था। जितनी ज्यादा भूमि होगी उतना ज्यादा टैक्स होगा। इस प्रकार पहाड़िया अपने पहाड़ों के भूमि के ऊपर किसानी करने से अपना स्वाभाविक अधिकार खो देते हैं, मालिक ना रहकर श्रमिक बन जाते हैं जिसका लाभ अंग्रेजों को जाताहैं । इन्हीं परिस्थितियों की वजह से पहाडियों में विद्रोह की भावना भड़कती है। " *किसी आरोपित बाहरी सत्ता के विरुद्ध अपनी परम्परागत स्वतंत्रता हेतु लड़ने को प्रस्तुत थे पहाड़िया । जमीन पकने लगी थी । ताप उठे थे पहाड़ । पहाड़ पर आग जल उठी थी ।*"[14]

कैप्टेन ब्रूक के बाद **जेम्स ब्राउन** को कम्पनी के द्वारा सैनिक गवर्नर नियुक्त किया गया और वह भी अपने पूर्वज की ही नीतियों के आधार चलता रहा । लेकिन ब्राउन ने पहाड़िया लोगों के दमन के साथ साथ उनके बीच शांति स्थापन के लिए मांझियों और सरदारों को माध्यम बनाया । इसके बाद **अगस्टस क्लीवलैण्ड** को इस पद पर नियुक्त किया गया । क्लीवलैण्ड इन पहाड़ियों छद्म स्वाभाव और मैत्री भावना दिखाता था और उनके पंचायत बैठकों में भी पहुँच जाता था । पहाड़िया बच्चों को क्लीवलैण्ड टोपी बाँटता था जिससे

इन पहाड़िया लोगों के दिलों में उसके लिए थोड़ा विश्वास पैदा हो गया था। अपनी झूठी मैत्री भावना के साथ वह इन पहाड़ियों का विश्वास जीतना चाहता था ताकि बिना विद्रोह और लड़ाई के अंग्रेज पहाड़ों पर अधिकारी पा लें। इसके साथ ही क्लीवलैण्ड एक ऐसी सैन्य टुकड़ी भी तैयार करना चाहता था जिसमें केवल पहाड़िया लोग हों और जिसे दुसरे आदिवासियों यथा- मुण्डा, संथाल आदि के विरुद्ध इस्तेमाल किया जा सके। जिससे पहाड़िया समुदाय की एकता नष्ट हो जाये और वे के विरोधी बन जाए। इस प्रकार की भावना पैदा करके वह जंगलतराई के पहाड़ों पर कम्पनी का स्थायी कब्जा स्थापित करना चाहता था।

अंग्रेजों की शक्तियों से दर कर पहाड़ों के कुछ क्षेत्रों के पहाड़िया लोग और उनके सरदार एवं मांझी उनके क्रूर नीतियों को मजबूरन स्वीकार लेते हैं। लेकिन कुछ क्षेत्र के पहाड़िया लोग अंग्रेजों के इस क्रूर नीतियों का विरोध करते हैं। अतः पहाड़ियों के बीच की एकता अंग्रेज की धूत नीतियों की वजह से टूट जाती है। अंग्रेज आदिवासी युवकों को अपने सैनिकों में बहाल कर लेते हैं और उन्हें अपनी ही जाति के लोगों से लड़ने को विवश करते हैं। अंग्रेज पहाड़ियों को अपने ही जाति से लड़ने और उनका घर बर्बाद करने को विवश कर देते हैं।

निष्कर्ष : इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सन् 1757 के प्लासी युद्ध एवं सन् 1764 के बक्सर युद्ध में विजय प्राप्ति के उपरान्त कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की जागीरदारी मुगल बादशाह से प्राप्त होती है। जिससे एक व्यापारिक कम्पनी उन क्षेत्रों की राजनितिक स्वामी बन बैठती है। इसके उपरान्त इस कम्पनी के ऋ सैन्य ताकत के बल पर इन क्षेत्रों के कृषि भूमि पर

ज्यादा टैक्स वसूलने लगते हैं और पैसे पहाड़ी और जंगली क्षेत्र जहां के आदिवासी आज तक किसी राजा को टैक्स ऐडा नहीं करते थे उन्हें भी टैक्स देने के लिए मजबूर किया जाता है। टैक्स वसूलने के साथ-साथ कम्पनी जमाखोरी एवं मुनाफाखोरी का भी व्यापार करने लगती है। वह आदिवासियों से सस्ते में अनाज खरीद कर जमा कर लेती है और अकाल के समय उसे बहुत ऊँचे दामों पर बेच कर मुनाफा कमाती है। उसे लोगों के जीने-मरने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह आदिवासी एवं किसानों को कम्पनी के मन मुताबिक़ खेती करने को बाध्य करती है। इन विपरीत परिस्थितियों से परेश्हन होकर ही बहुत सारे आदिवासी कम्पनी और अंग्रेजीं की नीतियों के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। कम्पनी इन विद्रोहों को कभी सख्ती से तो कभी छल-बल-कल से दबा देती हैं। कम्पनी यह भी प्रयास करती हैं कि अलग-अलग आदिवासी जातियों की अलग-अलग प्लटन तैयार करें और उसे दुसरे आदिवासियों के विद्रोह को दबाने के लिए इस्तेमाल करे। इसलिए कम्पनी ने जब्र के नेतृत्व में 'हिलरेंजर्स' की स्थापना की थी। जब जबरा का कम्पनी की नीतियों से मोहभंग होता है और कमपनी की साम्राज्यवादी नीतियों को पहचान जाता है तब वह वहाँ से लौटकर पहाड़िया जनजाति के लोगों को संगठित कर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करता है। वह अंग्रेज कलेक्टर को मार भी डालता है। परन्तु कम्पनी अपने क्रूर एवं कठोर नीतियों से जबरा को पकड़ कर फांसी दे देती है और पहाड़िया विद्रोह को कुचल देती हैं। राकेश कुमार सिंह ने अपने इस उपन्यास में कम्पनी और अंग्रेजों की इस विस्तारवादी साम्राज्यवादी नीतियों का प्रमाणिक ढंग से वर्णन रोचकता के साथ किया है। जो ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं सन्दर्भों पर आधारित है।

(ख) तिलका मांझी का जीवन संघर्ष :

राकेश कुमार सिंह का 'हुल पहाड़िया' उपन्यास एक ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिसमे लेखक ने इतिहास प्रसिद्ध आदिवासी आदिविद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा को पूरी तन्मयता, लगन, ईमानदारी के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्यों के आलोक में प्रस्तुत किया है। इतिहास ज्यादातर शासक वर्गों द्वारा लिखा और लिखवाया जाता हैं। इसलिए स्वाभाविक रूप से जो बातें उनके स्वार्थ, राजनीति, अहं, गरिमा के विपरीत होती हैं, वे उन्हें लिपिबद्ध नहीं करते हैं और साजिशन उन्हें उपेक्षित कर भुलाने का प्रयास करते हैं। तिलका मांझी की अंग्रेजों और कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह एक एसा ही प्रसंग है जिसे साम्राज्यवादी अंग्रेजी इतिहासकार याद नहीं करना चाहते थे। तिलका की संघर्षगाथा एक ऐसी ही दुखती राग है जिसे साम्राज्यवादी शक्ति और उसके पाले हुए इतिहासकार न सिर्फ भुलाना चाहते हैं बल्कि गलत तथ्यों को प्रस्तुत कर भारतीय जनमानस की स्मृतियों से तिलका मांझी की ऐतिहासिक समरगाथा को मिटाना चाहते थे।

इतिहास की इसी कमी को राकेश जी अपने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास के माध्यम से दूर करना चाहते है। उन्होंने काफी परिश्रम और शोध के उपरान्त तिलका मांझी के जीवन प्रसंग से जुड़े ऐतिहासिक तथ्यों को जमा किया और अपनी रागात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान के साथ भाव्य की रूपविधायनी शक्ति कल्पना तथा नवनावोंमेशशालिनी प्रतिभा के मणिकांचन योग से प्रस्तुत उपन्यास का सृजन किया है। जिसमें तिलका मांझी का जीवन

एवं संघर्ष अपनी पूरी ताकत एवं सजीवता के साथ हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। इस उपन्यास का नायक तिलका मांझी है और लेखक का एकमात्र उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर तिलका मांझी के जीवन एवं संघर्ष को पूरी प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करना हैं।

राकेश कुमार सिंह 'हुल पहाड़िया' उपन्यास की शुरुआत पहाड़िया-कम्पनी के मध्य हुए मतभेद का जिक्र करते हुए रमना आहड़ी, मनसा पहाड़िया, करिया पुजहर, चेंगरु सांवरिया, डोम्बो पहाड़िया जैसे तमाम आदिवासी विद्रोहियों का चित्रण करते हुए तिलका मांझी की समरगाथा रचते हैं।

"*फिरंगियों को जंगल तराई की दीवानी मिली थी तो नाला, जामताड़ा और कुड़हईत में सरकार का विरोध करते हुए लड़ मरा था रमना आहड़ी। मंचाला पहाड़ की तराई पहाड़िया लोगों के रक्त से तर हो गई थी ! कम्पनी सरकार की कर वसूली के विरुद्ध लड़ मरा था मनसा पहाड़िया।उधवानाला के पठार कर करिया पुजहर,चेंगरु सांवरिया और डोम्बो पहाड़िया के रक्त छींटे... /*"
15

राकेश कुमार सिंह ने अपने उपन्यास 'हुल पहाड़िया' में तिलका मांझी के निजी जीवन से लेकर राजनीतिक जीवन के विभिन्न छोटे-बड़े उतार को रेखांकित किया है। तिलका मांझी का पहला संघर्ष उनके किशोरावस्था से ही प्रारंभ हो जाता हैं जब मांझी के पद के लिए वह तीन कठिन चुनौतियों को स्वीकारता है।मांझी का पुत्र होने के बावजूद उसे अपनी योग्यता को सिद्ध करना

पड़ता है अन्यथा अन्य सुयोग्य उत्तीर्ण पात्र को ही मांझी का पद सौंप दिया जाता था। तिलका मांझी उर्फ़ जबरा को सबसे पहले बुलबुलिया दोहर में खुंटकट्टी करके दिखाना था। यह कार्य उस समय के लिए एक कठिन चुनौती इसलिए भी थी क्योंकि इस समय इस पूरे क्षेत्र में महादुर्भिक्ष छाया हुआ था और पहाड़िया गांवो में उन्हें पेट भर का अनाज नहीं मिल रहा था। जंगल में एक बुलबुलिया पहाड़ था जिसमें एक ऐसी भूमि थी जिसे कृषियोग्य भूमि बनाया जा सकता था। परन्तु इस दोहर में एक लंगड़ा बाघ फंसा हुआ था इसलिए कोई व्यक्ति इस जगह पर खुंटकट्टी नहीं कर पा रहा था। तिलका उस लंगड़े बाघ को मार गिराता है और दोहर में खुंटकट्टी कर देता है अर्थात उस भूमि को पहाड़िया लोगों के लिए कृषियोग्य बना देता है। उसकी दूसरी चुनौती थी अकाल के दौरान सारे गाँव के लोगों को भरपेट भिजन और अनाज उपलब्ध कराना, जिसका उपाय उसने कम्पनी का खजाना लूटने से निकाला। तिलका अपने कुछ साथियों के साथ तेलियागढ़ी के नाले के पास कम्पनी के खजाना लाने वाले घुड़सवारों और हरकारों को लूट लेते है और उस पैसों से हाट से चावल खरीद कर गाँववालों में बाँट देता हैं और उनकी भूख मिटता है। तीसरा कार्य था *'अपने पास के गाँव सोनारी के मांझी गुमना की बेटी गेंदी से अपने गाँव के लड़के और अपने बचपन के दोस्त फागुन की शादी कराकर दोनों गाँव में एक बनाए रखना और अपने गाँव का इज्ज़त बचाना ।'* [16] तिलका इस काम को भी खूबी अंजाम देता है। इस प्रकार तिलका उर्फ़ जबरा पहाड़िया अपने सामने आये चुनौतियों को निडरता के साथ पूरा करता है और गाँव का मांझी बन जाता है। पर उनकी ज़िम्मेदारी और संघर्ष उनके मांझी बन्ने के पश्चात और ज्यादा बढ़

जाती है। सन् 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्ति के बाद कम्पनी भी वक्र और कुटिल दृष्टि से राजमहल पहाड़ों और जंगलतराई के क्षेत्र पर पड़ चुकी थी और वे आदिवासियों और उनके जंगलों से भी टैक्स वसूलना चाहते थे। आदिवासियों के लिए परिस्थितियां बदल रही थी।

"*यह वह समय था जब पहाड़िया आदिवासी अपने राज्य हंडवा, गिद्धौर, लकड़ागढ़, लक्ष्मीपुर, समरूपपुर, महेशपुर, पाकुड़ आदि को राजपूती छल-प्रपंच से खो चुके थे। तेलियागढ़ी का किला उनके हाथों से निकल चुका था। 1765 में अंग्रेज मुगलों को पछाड़ कर उनसे बिहार, बंगाल और उड़ीसा की दीवानी हासिल कर पहाड़ियों पर अपना कब्ज़ा पुख्ता कर रहे थे।*

उनके आस-पास के मैदानी इलाको में ज़मींदारी प्रथा कायम कर रहे थे। महाजनों को बसा रहे थे। देशी रियासतों से सत्ता लगभग छीन चुके थे।"[17]

सन् 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी हासिल करने के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी दो नीतियों पर आगे बढ़ रही थीं। प्रथम हिन्दुस्तान के बाकी बचे हिस्सों पर भी राजनीतिक प्रभुत्व कायम भर सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को क्रमबद्ध रूप से गुलाम बना कर उसे अपना साम्राज्य बना लिया जाए। दूसरा जिन हिस्सों पर राजनीतिक कब्ज़ा हो चुका है उनको भरपूर आर्थिक दोहन किया जाए और उससे ब्रिटेन का खजाना भरा जाए। राकेश जी 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में कैप्टन मार्गन के मुँह से इसका खुलासा कराते हैं- "*जिन क्षेत्रों में हिंसा और आतंक नियंत्रिक लगे, उन क्षेत्रों में किसानों को बीज और कृषि*

उपकरण उपलब्ध कराए जाएं। चूंकि कंपनी का राजस्व बढ़ाना ही हमारा मुख्य लक्ष्य है, अत: शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के बाद कृषि-व्यापार को बढ़ावा देना बहुत छोटी कीमत होगी।"[18]

लेकिन पहाड़िया आदिवासी आज तक स्वतंत्र रहते आये थे। उन्हें अपने ऊपर किसी का भी अधिकारी स्वीकार नहीं था, वे अपने स्वतंत्र को किसी के सामने गिरवी रखना मंज़ूर नहीं था। परन्तु वे सब कंपनी की चालों और उसके शोषणों को देखने को विवश थे। परन्तु दूरदर्शी सुगना मांझी, जबरा उर्फ़ तिलका मांझी का पिता इसके खिलाफ आवाज़ उठाता है और मरने के पहले "*अपने बेटे जबरा को पूरे पहाड़िया समाज को शोषण मुक्त करने का दायित्व देता है।*" [19]तिलका मांझी भी अपने पिता ही की तरह कम्पनी के कानून और व्यवस्था के खिलाफ और संघर्ष को तैयार हो जाते हैं। उनके नेतृत्व करने पर पूरा पहाड़िया समाज लड़ने-मरने को भी तैयार हो जाता है। पहाड़िया विद्रोह का उदय इसी से होता है और जबरा पहाड़िया तिलका मांझी नए रूप में आ जाता है ।

तिलका मांझी का पिता दक्षिण क्षेत्र का एक मांझी था जिसने कम्पनी की नीतियों का विरोध किया। अपने जनजातियों के ऊपर कम्पनी का अत्याचार देखकर उसके मस्तिष्क में विद्रोह की लहर उठती है। जब कम्पनी पहाड़िया लोग से अपनी सेवा करवाने की योजना बना रही थी तो, पहाड़िया शक्ति से इसका विरोध करते हैं। स्वच्छंद एवं स्वतंत्र जीवन जीने वाले पहाड़िया को मजबूरी में भी किसानी सीखना मंज़ूर नहीं था। उन्होंने अंग्रेजो की

नीतियों से विद्रोह करने की ठान पकड़ ली थी। सारे पहाड़िया समाज का एक ही सपना था- कम्पनी से आजाद। इसलिए उनका संघर्ष प्रारंभ होता है । सबसे पहले तिलका के नेतृत्व में वे अंग्रेजों का माल लूट लेते हैं। उसके बाद कम्पनी का सैन्य - गवर्नर कैप्टन ब्रूक अपने सैनिकों के साथ जब जंगल में पहाड़िया गाँव ढूढ़ने जाता है, तब उसको मार भगाया जाता है जिसमें कैप्टन ब्रूक की मृत्यु हो जातीहै।

कैप्टन ब्रूक के बाद कैप्टेन ब्राउन आया जिन्होंने पहाड़िया लोगों से प्रारंभ में सीधी लड़ाई ना करके एक नई मेल-मिलाप का छद्म रणनीति बनाई। वह पहाड़िया लोगों के विश्वास जीतने और हमदर्द बनने का नाटक करता है। वह अगस्टस क्लीवलैंड को राजमहल क्षेत्र का सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त करता है। पहाड़िया समाज के मांझियों को उपहार देकर उनका विश्वास जीतना अंग्रेजों की कूटनीतिक योजना थी। इन सबके कारण जंगल में भी कुछ दिनों के लिए शान्ति छा जाती है। उसने आदिवासियों को अपनी झूठी हमदर्दी और सद्भाव में फंसा लिया।"*रमना आहड़ी, मनसा पहाड़िया और पुइक सरदारों की बगावत में पहाड़िया लोगों ने आग में घी का काम किया था। उधवानाला में कम्पनी के विरुद्ध हथियार उठाने वाले ये पहाड़िया कम्पनी को अपना चिर-शत्रु मानने लगे थे। क्लीवलैण्ड ने पहाड़िया लोगों का मस्तिष्क बदल डाला था...ब्रेनवाश!*

क्लीवलैंड ने हठी पहाड़िया जाती की निष्ठा को कम्पनी के हितों के अनुरूप ढालने का जो जादुई करिश्मा कर दिखाया था, वह ऐतिहासिक सफलता

थी।" [20] परन्तु कुछ दिन बाद क्लीवलैंड ने तिलका का भयादोहन किया कि वह भागलपुर उसके साथ चले और 'हिलरेंजर्स' का कमांडर बने जिसका उन्होंने गठन किया है। तिलका इस न्योता को इसलिए स्वीकार कर लेता है क्योंकि वह अपने परिवार की सुरक्षा के लिए चिंतित हो जाता है। साथ ही साथ वह अपने गाँव और समाज को विपदा में नहीं डालना चाहता है। इस प्रकार अंग्रेजों द्वारा तिलका को कमांडर बनाकर ढेर सारे पहाड़िया लोगों की सैनिकों के रूप में 'हिलरेंजर्स' में दाखिला कर लिया जाता है। अंग्रेज 'हिलरेंजर्स' को अपने ही आदिवासी भाईयों से लड़ने पर विवश कर दिया जाता है जिसमें तिलका कुछ नहीं कर पाता है। संताल और मुंडा विद्रोहियों का दमन करने के लिए 'हिलरेंजर्स' को रामगढ़ में भेज दिया जाता है और इस संघर्ष के दौरान तिलका को तेलियागढ़ी वाला सपना आता है जिसमें उसे दो जबरा दिखते हैं और देवी मनसा विषहरी जबरा को गुस्से से डांटती फटकारती हैं और तिलका जबरा का सिर काट देता है। तब तिलका मांझी सपने से जाग जाता है और हकीकत पहचान पाता हैं। तब तिलका का अंतर्मन विद्रोह कर देता है। अंग्रेजों का पहाड़ियों और अन्य आदिवासियों पर बढ़ते शोषण को देखकर उसमें विद्रोह की लहर दुबारा उठ जाती है। जबरा पहाड़िया अपने 'हिलरेंजर्स' के कमांडर की पहचान को नष्ट कर विद्रोही तिलका मांझी बन जाता है और हिलरेंजर्स के सैनिक पहाड़िया युवकों को एकत्रित कर अंग्रेजों के खिलाफ पुन: विद्रोह शुरू करता है।

एक तरफ तिलका जंगलतराई के अपने आदिवासी भाईयों की स्वतंत्रता के लिए कम्पनी की सेना पर अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग प्रकार से आक्रमण करता है तो इन आक्रमणों एवं उसमें हुए नुक्सान से परेशां होकर कम्पनी के अधिकारी तिलका को पकड़ने एवं विद्रोह को दबाने के लिए अमानवीय तरीकों को अपनाते हैं। वे अलग-अलग गांवों पर आक्रमण करते हैं। निर्दोष आदिवासियों को हंटरों से पीटते हैं और उन्हें जेल में डाल देते हैं। उनके जानवरों को मार देते हैं। उनके घरों को आग लगा देते हैं। उनकी भोजन आदिवासी पहाड़िया समाज के बीतर आतंक उत्पन्न करने की होती है ताकि कोई भी पहाड़िया नवयुवक तिलका का साथ न दे और तिलका को पकड़ने में कम्पनी का साथ दे।

पीपरा गाँव में कम्पनी का देशी तहसीलदार बनवारी सिंह घटवाल, जो कम्पनी की बंदूक को उठाने पर अपने को कम्पनी ही मानने लगता है और उनके साथी सिपाही का पहाड़िया समाज / लोगों पर ऐसा हमला जैसे उन्होंने मनुष्य नहीं मन गया हो। इन सबको देख तिलका का मन क्रोध से भर उठता है।

"*पीपरा गाँव में जो अघटनीय घटा था सो देखकर आया था तिलका। जो तिलका ने देखा था ,जंगलतराई में पहाड़िया के जीवन में कभी वैसा दृश्य नहीं दिखा था। तिलका ने कभी नहीं सुना था पहाड़िया लोगों का ऐसा दीन क्रंदन। अब कम्पनी के लिए पहाड़िया मित्र नहीं रह गए थे, अब कम्पनी के लिए पहाड़िया मनुष्य नहीं रह गए थे। पुनः ढोल - डंगर हो चुके थे पहाड़िया।*"[21]

पहाड़िया विद्रोह से नाराज होकर अगस्टस क्लीवलैंड पहाड़िया समाज को पूरी तरह नष्ट कर देना चाहता है। वह और उसके साथी अंग्रेज अधिकारियों ने फ़िलिप के नेतृत्व में बहुत सारे सैनिकों को पहाड़ की तरफ भेज दिया। उनकी योजना थी कि जो भी पहला गाँव मिले, उसमें आतंक मचा दिया जाये। परन्तु उनके रास्ते में एक ही गाँव मिला जो पहले ही नष्ट भी नस्त हो चुका था। वे आगे बढ़ते गए और सूर्यास्त होते-होते एक बहते नाले तक पहुंचे जहाँ उनकी लड़ाई पहाड़िया विद्रोहियों से होती है। यहाँ अंग्रेजी सेना पराजित होकर भाग जाती है और फ़िलिप मारा जाता है।

सुल्तानाबाद की रानी सर्वेश्वरी देवी पहाड़िया विद्रोहियों से स्नेह रखती थीं और उनकी मदद यथासंभव करने का प्रयास करती थीं। उनकी अग्रगामी दृष्टि तिलका के नेतृत्व में चलने वाले पहाड़िया विद्रोह की सफलता में अपनी भावी विजय की संभावना देख रही थी। कम्पनी की चालाकियों, चालबाजियों एवं कूटनीतियों का पर्दाफाश करती हुई रानी सर्वेश्वरी कहती हैं- *"कम्पनी चालबाज है। पहाड़िया पर भी लगान थोपना चाहती है। कम्पनी और लगान वसूलने का जिम्मा हम राजा-जमींदारों पर डालना चाहती है।...ताकि पहाड़िया राजा-जमींदारों के खिलाफ हथियार उठा लें। जंगलतराई का पहाड़िया लोगों से एक टूट जाए। पहाड़िया किसी राजा-जमींदार का साथ न दें और कमजोर कहकर कम्पनी राज-जमींदारी हड़प ले।...काट यही है तिलका कि कम्पनी से तुम्हारी लड़ाई में हम रजा-जमींदार तुम्हारा साथ दें...देंगे। लक्ष्मीपुर के जमींदार भी तेरा साथ देंगे। भूईयां घटवाल भी तेरे पीछे खड़े हैं।...हां रे। हमारे*

पास भी लड़ने के सिवा कोई रास्ता बचा नहीं है। हमारे पास तो खोने को किलो है, हारने को जमींदारी है, राज-पाट है, तो हम तो लड़ेंगे ही। तुम्हारे पास तो खोने के लिए कुछ है ही नहीं, लेकिन पाने के लिए जरूर है।...अपना खोया हुआ मान ! पहाड़ की आन। इसी के लिए तो हजारों साल से जूझते आए हैं तुम पहाड़िया लोगों के पुरखे ।" [22] पुनः रानी कहती हैं- "*पर तू जिएगा, तभी तो हम भी जियएंगे ? जब तक पहाड़िया लोग हैं, हम भी हैं। हमें तो तुम लोगों को बचाना है अपने लिए।... जानती थीं रानी सर्वेश्वरी कि पहाड़िया जीवित रहे, विजयी हुए तो दुःखों की घाटियों के पार पहाड़ के शिखर पर बचा रहेगा जीवन ! बची रहेगी आशा !* " [23]

तिलका मांझी और पहाड़ियों के पक्ष होने के कारण सुलतानाबाद की रानी सर्वेश्वरी को अपने ही महल में अंग्रेजों द्वारा कैद किया गया था। उनके पास आने जाने की अनुमति किसी को नहीं दिया गया था। तिलका मांझी और उसके साथी देसी चौकीदार को डांट वहां से भाग निकले और रानी के महल में चोरी छिपे अंदर गए। बाहर अंग्रेजी सिपहिया घेर लिए थे और तिलका और उसके साथियों को बाहर सुरंग से बाहर जाना पड़ा जिसका मुह मंदिर में सुन्दर पहाड़ पर खुलता हैं। अतः पहाड़ियों को अपने ही भूमि में आजादी से निकलने नहीं दिया गया था।

"*पता नहीं कितनी देर तक वे सुरंग में चलते रहे थे। लगता था सुरंग की ऊँचाई हर जगह एक सामान नहीं थी। कभी वे स्वयं को ऊपर चढ़ता अनुभव करते थे तो कभी नीचे उतरने का अनुभव होता था। हवा की कमी के कारण*

फेफड़ों की पूरी ताकत से सांस खींचना पड़ रहा था। बाहों-जाँघों की मांसपेशियां भारी लगने लगी थीं, परन्तु सुरंग तो ख़त्म होती ही नहीं दिखती थी। वे आगे रेंगते गए थे।" [24]

कई वषों तक बरसात नहीं होने के कारण जंगलतराई भयानक अकाल से गुजर रही थी। ऐसे में भूखों मरने से बचने के लिए तिलका और पहाड़िया समाज को खेती करने को विवश होना पड़ा। दूसरी तरफ पहाड़ियों के छापामार युद्ध से परेशान होकर अंग्रेजों ने उनको अपने ही जंगल में चारों तरफ से घेर लिया गया था। उनका खान - पान के लिए भी भागलपुर जाना असंभव जैसा हो गया था। बरसात के बीतने के बाद अंग्रेज कम्पनी पहाड़ की तरह टूट पड़ती है। कम्पनी सेना को छः टुकड़ों में बाँट कर जंगलतराई में उतार दती हैं। इसके कारण पहाड़िया एक जगह पर एकत्रित नहीं हो पाते हैं। अंग्रेजी सेना के साथ युद्ध में उनके साथी एक-एक कर मारे जाने लगते हैं। तिलका अपने साथियों को पहाड़िया के लिए जान देते देख रहा था। वह अपने साथियों को खोना नहीं चाहता था।

तिलका और क्लीवलैंड की सेना के बीच जब एक बार लड़ाई होती है तब तिलका क्लीवलैंड को घायल कर देता है। अंग्रेजी सेना के भाग जाने के बाद तिलका अपने साथियों के साथ उल्लास मना ही रहा था कि उस बीच अपने गोड़ाइत फागुन को न देख वह उसे खोजने लगता है। लेकिन फागुन उस युद्ध में शहीद हो चूका होता है। फागुन का मृत देह पकड़ तिलका के मन में हजारों समुन्दरों का हाहाकार उठाता है परन्तु वह रो नहीं सकता है। उसके लिए हर

पहाड़िया हुलमाहे के जीवन का मोल बराबर था। फागुन के लिए वह कैसे रोता और रोकर वह अन्य शहीद पहाड़ियों की मृत्यु को छोटा कैसे कर सकता था। अपने मुंह बोला भाई, बाल सखा, गोड़ाइत फागुन की मृत्यु के कारण अंदर ही अंदर तिलका रो रहा था, कराह रहा था, उसके हृदय को शूल चुभ रहा था परन्तु बाहर नहीं दिखला सकता था।

"*कुंजरा और फागुन के बारे में बताते हुए कराह था तिलका। तिलका के भीतर आत्मा में चुभे हुए थे हजारों तीर ! तिलका के भीतर अनहद नाद की भांति गूँज रहा था टूटते धीरज को मथने वाला मौन आर्तनाद।*"[25]

इस विषम परिस्थितियों में तिलका मांझी ने क्लीवलैंड को मारने की बात ठान ली, परन्तु अकेले। उसके कहने पर गाँव खाली कराने जाने लगे थे।"*तिलका अंतिम निर्णायक हुल को न्योता देने भागलपुर - राजमहल की और निकल पड़ा था ... अकेले।*" [26] भागलपुर पहुंचकर तिलका लगातार एक ताड़ वृक्ष पर बिना खाए पिए छिपा बैठा रहता है, क्लीवलैंड की प्रतीक्षा में। एक दिन संयोग से क्लीवलैंड उस तरफ टहलने आता है और तिलका उसे तीर से मार कर घायल कर देता है जिसकी वजह से बाद में क्लीवलैंड की मृत्यु हो जाती है।

क्लीवलैंड की मृत्यु से नाराज होकर अंग्रेजों जंगलतराई को अब सैनिक कैम्प में बदल देते। चारों तरफ सेना ही सेना थी। अब एक मात्र ऊँची पहाड़ की पहाड़ियों ही पहाड़िया आदिवासियों एवं विद्रोहियों की शरणस्थली बन गयी थी। पहाड़िया गाँव खाली होते जा रहे थे और जो खाली नहीं हो पाए थे, वे

अंग्रेजों के भयानक दमनचक्र का शिकार बन गए। पहाड़ों तक आने-जाने का अरण्यमार्ग, जो जंगलतराई को बाहर की दुनिया से जोड़ने वाले मुख्य मार्ग थे, को अंग्रेजी सेना ने बंद कर दिया जिसके कारण घटवालों द्वारा अनाज की आपूर्ति बंद हो गयी। अब उनके पास भरपेट भोजन भी उपलब्ध नहीं था। उनके तीर समाप्त होने लगे थे। अब पहाड़िया वीर भूख से मर रहे थे। और भूख से मरना 'पहाड़िया की आन की बात नहीं थी।' इसलिए वे तिलका के नेतृत्व में अपने विद्रोह को और सघन करते हैं। पहाड़िया वीर पहाड़ से नीचे बाढ़ की तरह उतरते हैं और अंग्रेजी सेना पर भयानक आक्रमण करते हैं। इस संघर्ष में राजमहल के पहाड़ और जंगलतराई के जंगल उनके खून से लाल हो जाते हैं-

"*राजमहल के पहाड़ों के चट्टानी के शिखर, जिन्होंने बालसूर्य की आदिम लालिमा देखी थी, अब देख रहे थे अपनी पहाड़िया संतान के रक्त से नहाती भूमि। अपनी चट्टानों-ढलानों पर बहती रूधिर-धाराएं देख रहे थे पहाड़। चल रहा था पहाड़िया हुल्माहों का रक्तिम संघर्ष।*" [27]'जीवन का अंतिम बेझा तुन खेलते' पहाड़िया लोग मर रहे थे। तिलका स्वयं भी घायल और लहुलुहान हो गया था। लेकिन तब भी तिलका मृत्यु से निरपेक्ष आगे बढ़ता जाता है और अंग्रेज सिपाहियों का सिर काटता जाता है। अंत में वह अंग्रेजी सेना के हाथों गिरफ्तार हो जाता है। अंग्रेजी सिपाहियों ने घायल तिलका दोनों हाथों को मजबूत रस्सी के छोर से बंधे और रस्सी का दूसरा सिरा घोड़े से बाँधकर उसे घसीटते हुए भागलपुर तक लाया गया। जहाँ उसे बरगद के पेड़ की डाल से

बांधकर फांसी दे दी जाती है। इस प्रकार आदि विद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा का अंत होता है।

आदिवासी के प्रथम वीर तिलका मांझी ने अपनी जाति, समाज, गाँव, परिवार के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने हर तरह से अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया। एक समय कमज़ोर पड़ जाने के बाद भी वह जाग उठता है और पुन: विद्रोही के रूप में प्रस्तुत होता है। अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के बावजूद वह अपने गाँव, घर तथा समाज को गुलामी की जंजीरों से बचा नहीं पता है। परन्तु अपने मरते दम तक वह अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ा और शहीद हुआ।"*तिलका मांझी की चमड़ी , मॉस , मज्जा, रोएं, केश, रक्त . . . सड़कों पर तिल- तिल कर बिखर रहा था बाबा तिलका मांझी ! रीढ़ की हड्डी दिखने लगी थी। पसलिया उजागर हो चुकी थी। सड़क पर उलट-पुलट हो रही थी तिलका की देह रागड़खा रही थी अधूरी इच्छाए।"*[28]

लेकिन तिलका मांझी के मरने से उसकी लड़ाई और सपनों का अंत नहीं होता है। वह अपनी शहादत से आने वाली पीढ़ियों के सपनों में दमामा बजाते और संघर्ष की चिंगारी और स्वतंत्रता की चेतना जागृत कर जाता है। वह आजीवन अपने लोगों की आजादी के लिए अंग्रेज की क्रूर नीति एवं व्यवस्था से लोहा लेता रहा। उनका पूरा जीवन संघर्ष से भरा था। वह सच्चे अर्थों में भारतीय इतिहास में अंग्रेजों की साम्राज्यवादी कुटिल नीतियों के विरुद्ध विद्रोह करने वाले आदिविद्रोहियों में अग्रगण्य है।

*****

संदर्भ सूची :

1. लक्ष्मी सुब्रमणयण, भारत का इतिहास, पृ. 48

2. Sakhawliana,Public Administration, Pg. 114

3. शेखर बंद्योपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, पृ. 41-42

4. Sakhawliana,Public Administration, Pg. 115

5. शेखर बंद्योपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, पृ. 42

6. लक्ष्मी सुब्रमणयण, भारत का इतिहास, पृ. 52

7. शेखर बंद्योपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, पृ. 42

8. शेखर बंद्योपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, पृ. 43-44

9. लक्ष्मी सुब्रमणयण, भारत का इतिहास, पृ. 54

10. शेखर बंद्योपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, पृ.44

11.लक्ष्मी सुब्रमणयण, भारत का इतिहास, पृ.56

12.राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 46

13. वही, पृ. 46

14. वही, पृ. 103

15. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 11

16. केदार प्रसाद मीणा, संघर्ष की गाथा, जनसत्ता, 28 अप्रैल 2013

17. वही

18. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 108

19. केदार प्रसाद मीणा, संघर्ष की गाथा, जनसत्ता, 28 अप्रैल 2013

20. राकेश कुमार सिंह , हुल पहाड़िया, पृ. 231-232

21. वही, पृ. 234

22. वही, पृ. 167

23. वही, पृ. 168

24. वही, पृ. - 170

25. वही, पृ. - 292

26. वही, पृ. - 301

27. वही, पृ. - 314

28. वही, पृ. - 317

चतुर्थ अध्याय

'हुल पहाड़िया' का शिल्प

(क) भाषा :

भाषा वह है जिसके माध्यम से अपने विचारों और भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।ब्रिटेनिका इन्साइक्लोपीडिया में भाषा की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी गई है- *"Language may be defined as an arbituary system of vocal symbols by means of which human beings as member of social group and participations in culture interact and communicate."* अर्थात " *भाषा व्यक्त ध्वनि-चिन्हों की उस पद्धति को कहते हैं जिसके माध्यम से प्रत्येक समाज के दल एवं संस्कृति के मानने वाले सदस्य पारस्परिक विचार- विनियम किया करते है।*"[1] आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार भाषा "*उच्चरित ध्वनि-संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्तिहै।*"[2] भाषा हमारे भीतर की सृजनात्मक क्षमता, विकास, हमारी पहचान, सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान का साधन है। भाषा के बिना मनुष्य पूरी तरह अधूरा है और वह अपने इतिहास और परंपरा से अलग हो जाता है।

साहित्य विशाल है और भाषा को साहित्य की रीढ़ की हड्डी कहा जा सकता है अर्थात् उसका आधार माना जा सकता है। भाषा साहित्य का अभिन्न अंग है। रचनाकार समाजों से अनुभव प्राप्त करता है और उसी अनुभावों को

अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है। साहित्य में रचनाकार अपनी भावनाओं और विचारों को पाठकों तकपहुँचाने के लिए भाषा का प्रयोग करता है। जीवन में जिस प्रकार भाषा अनिवार्य है उसी प्रकार साहित्य में भाषा का प्रयोग अनिवार्य है। हम अपने जीवन में प्रतिदिन भाषा का प्रयोग करते हैं उसी भाषा का साहित्य में रचनात्मक रूप में प्रयोग किया जाता है। उसमें रचनात्मक तत्व समाहित होता है। एक रचनाकार बोल-चाल की भाषा का अपनी रचनाओं में इस तरह प्रयोग करता है कि उस भाषा का नया रूप उभरकर सामने आ जाता है।

रचनाकार ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जिससे पाठक के हृदय में वह बात समा जाये जो वह अपने कथाओं के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास की भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है। इसमें अंग्रेजी शब्दों के साथ स्थानीय भाषा के शब्दों को भी राकेश कुमार सिंह ने प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल प्रयोग किया है।

(अ) शब्द भंडार :

"*किसी भाषा के शब्द उसके प्राण होते हैं। भाषा की समृद्धता और उसका मानकीकरण उसमें प्राप्त शब्दों पर निर्भर होता है। जिस भाषा में अन्य भाषाओं से जितने ही अधिक शब्द ग्रहण करने की क्षमता होती है वह भाषा उतनी ही समृद्ध निर्मित होती है।*" [3] भाषा शब्दों द्वारा बनाई गयी है। राकेश जी

ने अपने प्रस्तुत उपन्यास में तत्सम, तद्भव, देशज और कुछ विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है।

तत्सम शब्द :

"*तत्सम अर्थात् उस (संस्कृत) के समान- समान ही नहीं, अपितु शुद्ध संस्कृत के शब्द जो हिंदी में ज्यों के त्यों प्रचलित हैं।*"[4] 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में तत्सम शब्दों का सुन्दर प्रयोग कई स्थानों पर देखने को मिलता है। जैसे :-

" ज्योत्सनापुरित **अर्धरात्रि** के आकाश में चमकते असंख्य तारों को राग से निहारता रहा था जबरा पहाड़िया।" [5]

" टिमटिमाते तारों के संग उसके असंख्य पुरखे भी बैठे थे **व्योम** में। " [6]

" आसमान में सितारे बने बैठे ओ मेरे पुरखो, तुम्हारे जीवट और जुझारूपन की परंपरा को जीवित रखने को प्रतिबद्ध है तुम्हारा यह **वंशज** जबरा पहाड़िया! " [7]

"राजमहल की पहाड़ियों पर बसे पहाड़िया समाज के हजारों वर्षों से चली आ रही परंपरा थी कि गाँव के मांझी (मुखिया) के **ज्येष्ठ** पुत्र को पिता के बाद मांझी का पद स्वत: प्राप्त हो जाना चाहिए।" [8]

"भविष्य **पुराण** में वर्णित इस **क्षेत्र** 'नारी खंड' की **अरण्य** भूमि की आदि निवासी थीं, पहाड़िया, भुईयां और खेतौरी जातियां।" [9]

"**नृत्य**-मदिरा में लीन हो गए थे।" [10]

"उस मायावी रात के अद्भुत **स्वप्न** को कभी भूल नहीं सका था जबरा।" [11]

"चैती ने कृत्रिम **रोष** दिखाया था।" [12]

" दोहर में **मानुष** गंध पाते ही बाघ सावधान हो सकता था।" [13]

" जंगलतराई पर महाअकाल **मृत्यु-दूत** की भाँती सवार था।" [14]

" चेतानी-समझाना **व्यर्थ** था।" [15]

" **विवाह** हेतु निषिद्ध होता है बिटलाहा का कलंकित और निकृष्ट परिवार।" [16]

" गाँव के युवक **ईर्ष्या**लु हो उठे थे।"[17]

" एक अरब साठ करोड़ वर्ष पुरानी राजमहल की वे पहाड़िया, जिन्होंने, सर्वप्रथम उगते **सूर्य** को देखा था।" [18]

" वनवासियों के **दुःख** साझा!" [19]

तद्भव शब्द :

"जो शब्द प्राकृत या अपभ्रंश भाषाओं से होते हुए हिंदी में आये हैं, वे 'तद्भव' कहलाते हैं। हिंदी में ऐसे शब्दों की भरमार है।" [20] राकेश जी प्रस्तुत उपन्यास में तद्भव शब्दों का बहुतायत में प्रयोग करते है। जैसे :-

" कितनी गुस्सैल दिखती थी जबरा की **आँखें** ?" [21]

" गुड़ के ये **तीन** भेलियां **तीन** चुनौतीपूर्ण कार्य संपादित करने की शपथ उठाने का प्रतीक थीं।" [22]

" दोहर में ही कुछ **अनाज** की आस है।" [23]

" **धरती** जीतना दे दे, उतने में संतोष करेंगे।" [24]

" दोहर में खूंटकट्टी नहीं हुई तो सांवा-कोदो तो **उपजना** नहीं है पहाड़ पर। बैजू **बूढ़ा** बोला था।" [25]

" अतीत की असंख्य, पेंच-घुमाव वाली **गुफा** में उतरने लगा था सुगना पहाड़िया।"[26]

" तेलियागढ़ी का **सपना**।" [27]

" गेंदी उस दिन से चूल्हे की **लकड़ियों** के लिए दक्षिणी पहाड़ों की ओर जाने लगी थी।" [28]

" **रात आधी** से अधिक गुजर चुकी थी। प्रस्फुटित होते **महुए** के पुष्पगुच्छों को सहलाती गन्धवाही हवा तेज हो चली थी।" [29]

" बाह में **तीर** की नोंक का घाव था।" [30]

देशज शब्द :

" *'देशज' (देश+ज) शब्द का आर्थ है - देश में जन्मा। अतः इसे शब्द जो क्षेत्रीय प्रभाव के कारण परिस्थिति व आवश्यकतानुसार बनकर प्रचलित हो*

गए, देशज या देशी शब्द कहलाते हैं।'[81] 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में लेखक ने कुछ देशज शब्दों का प्रयोग किया है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास आदिवासी जनजीवन पर केन्द्रित हैं।इसलिए पहाड़िया आदिवासियों की भाषा के शब्दों का प्रयोग लेखक कई स्थानोंपर कथानक एवं चरित्र को प्रमाणिकता प्रदान करेने के लिए करता है। जैसे :-

" **टिमटिमाते** तारों के संग उसके असंख्य पुरखे भी बैठे थे व्योम में।" [32]

" मोरपंखी **कपड़े** पहने **विषहरी माई** उंचे आसन पर बैठी है।" [33]

" खाने को कहने आई तो गाय, बेंड़ा, **भौजी**, हिंडोला का प्रपंच **काहे को बतियाने लगी थी**?" [34]

" **का साहेब**! **काहे को लजवाते** हो हमें!" [35]

विदेशज शब्द :

इसे आगत शब्द भी कहा जाता है। विदेशज शब्द का आर्थ है विदेश में जन्मा। हिंदी में अनेक शब्द ऐसे हैं जिसका मूल विदेशी हैं और इन शब्दों को ज्यों-का-त्यों अपनाया गया है। हिंदी में दो प्रकार के विदेशी शब्द है - मुस्लिम शासकों द्वारा प्रभावित भाषाएँ जैसे अरबी, फ़ारसी, पश्तों और यूरोपीय कंपनियों के आगमन से प्रभावित जैसे पुर्तगाली भाषा, अंग्रेजी भाषा, डच आदि। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में दोनों प्रकार के विदेशज शब्दों क प्रयोग लेखक ने किया है।

(अ) अरबी, फारसी शब्द :

" **औरतों** के लिए चूड़ियाँ, माला, टिकुली और फीते खरीदेंगे।" [36]

" धत्त बुड़बक! तेरा काम कोई **मुश्किल** काम थोड़े है।" [37]

" **गजब** घटित हुआ था।" [38]

" कम्पनी की प्रताड़नाओं से त्रस्त राज-**परगने** भी चकित थे।" [39]

" कम्पनी कोई एक **आदमी** नहीं है रे। बहुत आदमी है कम्पनी।" [40]

(ब) अंग्रेजी शब्द :

भारत में अंग्रेजों का राज लगभग दो सौ वर्षों तक चला था जिसके कारण भारत में अनेक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से होने लगा है। कुछ ऐसे अंग्रेजी शब्द भी होते हैं जिनका अनुदित रूप होता है। परन्तु भारत के लोग अंग्रेजी शब्द का ही प्रयोग करते हैं और कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनका हिंदी में अनुदित रूप नहीं मिलता है अर्थात ऐसे अंग्रेजी शब्दों को ज्यों-का-त्यों प्रयोग में लाया जाता है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में ईस्ट इंडिया कम्पनी की राजसत्ता का वर्णन है जिसके कारण इस उपन्यास में अंग्रेजी शब्द का प्रयोग राकेश जी प्रचुरता से करते है। यथा :

" उधवानाला के युद्ध से इंगलिस्तान की **'ईस्ट इंडिया कम्पनी'** ने जंगलतराई के दोहन का अधिकार लूट लिया था।" [41]

" नन्ही जेनी उपेक्षित होने लगी तो अपने **फार्म हाउस** में शानदार बुढापा जीते मार्को और आनंदी ने अपने अकेलेपन को जेनी से भरने की इच्छा जताई थी।" [42]

" जब रोटी और **हॉबी** मिल जाते हैं तो उत्पन्न होता है एक अद्भुत नशा।" [43]

" **प्रोफेसर** डैनियल के चुनिंदा भारतीय मित्रों में से एक थे मगध विश्वविद्यालय बोधगया (बिहार) के इतिहास विभाग के अध्यक्ष **डॉक्टर** श्यामबिहारी सिंह, ...।" [44]

" मैं यहीं **यूनिवर्सिटी** की अतिथिशाला में हूँ।" [45]

" मैंनें **नेट** पर ढूंढ़ा।" [46]

" संताल परगना का **गजेटियर** गवाह है की पहाड़िया आन्दोलन को कुचलने के बाद भागलपुर के संयुक्त दंडाधिकारी सदरलैंड ने संतालों को सरकारी सहायता और करमुक्त कृषि की सुविधा दे कर जंगलतराई में बाकायदा बसाया था।" [47]

" इस अभियान में सदर**लैंड** का सहायक था तत्कालीन दामिन-ए-कोह का **सुपरिंटेंडेंट** जेम्स पांटेट।" [48]

" अपनी **नोटबुक** में फर्राटे से कलम चली जेनी की उँगलियाँ भी ठिठक गयी थीं।" [49]

" तिलका के उदय और संघर्ष को जानना हो तो पहले उन परिस्थितियों का **पोस्टमार्टम** अनिवार्य है... ।" [50]

" राजेंद्र **पैंट्री-कार** की और बढ़ गया था।**बर्थ** पर लेटते प्रोफेसर सिंह ने कहा था, दरअसल भारत की आजादी के संदर्भ में कांग्रेस **पार्टी** को हमेशा अधिमुल्यत किया जाता रहा है।"[51]

" **जनरल** बार्कर ने आदेश को अपनी **डायरी** पर दर्ज किया था।" [52]

" **गवर्नर** जनरल को क्या **रिपोर्ट** देंगे हम? यही कि हमने **कैप्टेन** ब्रूक को खो दिया?" [53]

" **ट्रेन** भोर के पांच बजे गढ़वा **रोड जंक्शन** पर आ कर रुकी थी।" [54]

"वह अधेड़ यात्री **कंपार्टमेंट** से बाहर हवा बदलने हेतु निकला था,... ।" [55]

" मेरा **इंटरव्यू** तो गया।" [56]

" आगे जाने की यह इकलौती **लूप लाइन** है।" [57]

" **स्टेशन** का मुख्य कार्यालय सामने वाले **प्लेटफार्म** पर था।" [58]

" उसके पास **हिलरेंजर्स** के **कमांडर** के लिए उपयुक्त पात्र था- जावराह् पहाड़िया।" [59]

राकेश जी ने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास को सजीवता एवं रोचकता प्रदान करने के लिए पात्रानुकूल अंग्रेजी भाषा का भी प्रयोग किया है। जैसे -

" **यू स्काउंड्रल** !" [60]

" बस इतना ही मिला **टिलका मांझी वाज अ सान्टाल रेबेलियोन। ही किल्ड आगस्टस क्लीवलैण्ड, द ब्रिटिश कलक्टर ऑफ भागालपुर। ही हैंग्ड एट भागालपुर ऑन जुलाय**, 1785।" [61]

" **इट्स रियली एम्मेजिंग**।" [62]

" **तिलकाह मान्झी, जौराह पाहरिया, तिलकाह पहारिया, जौराह मान्झी, वॉट द मिस्ट्री**?" [63]

" **जस्ट किल देम**।" [64]

" **मो डाउन वीलेजज! सर्च एण्ड किल हिम**।" [65]

" **आई वाज रांग चार्ल्स! यस, मिस्टर गुडविल इज एब्सोल्युटली राइट**!" [66]

" **अरेंज अ मिटिंगविद मिस्टर गुडविल। कॉल अदर आफिसियल्स टू**!" [67]

" **पोजीशन! फायर, फायर**।" [68]

स्थानीय भाषा:

ये वे भाषा है जो किसी विशेष जाति और समाज द्वारा बोला और प्रयोग किया जाता है। राकेश जी अपने इस उपन्यास में पहाड़िया जनजातीय भाषा का प्रचुरता से प्रयोग किया है। यद्यपि पहले की रचनाओं की तुलना में राकेश जी ने इस उपन्यास में पहाड़िया जनजातीय भाषा का प्रयोग स्थानीय रंग देने के लिए कम किया है और जहाँ भी कठिन स्थानीय शब्दों का प्रयोग आवश्यक जान पड़ा है, राकेश जी उसका प्रयोग करते हुए उसका हिंदी पर्याय फुट नोट में देते जाते हैं। ताकि पाठक को अध्ययन करते समय और रसानुभूति में कोई परेशानी न हो। जैसे :-

" तीन कम की रात न होती तो **मांझी** के **लावल्दी** मरने पर मांझी थान के लिए मार-काट न मच जाती या गाँव बिन मांझी के न रह जाते?" [69]

" सुगना मांझी का ही सुझाव था कि बुलबुलिया **दोहर** में **खूंटकट्टी** कर थोड़ा धान रोपा जा सकता था।" [70]

" बाघ का पिछला एक गोड़ **घवाह** है।" [71]

" जो घवाह बाघ को छेड़े, उसे **सहस्सर** घाव।" [72]

" सरदार लगन पहाड़िया और मांझी सुगना पहाड़िया के बीच शिला पर ही पलाश पत्तों के बने **दोने** में खजूर के गुड़ की तीन भेलियां रखी थीं।" [73]

" **किरिया** खाता हूं।" [74]

" गाँव के मांझी को ऐसा ही **करेजगर** होना चाहिए।" [75]

" गुमना मांझी ने **गिरह** भेजा था।" [76]

" बात **बिटलाहा** तक न पहुंचे।" [77]

" सरदार, मांझी, **परगनैत**, **देवासी** और **भाग्दो** अलाव के निकट बैठकर भुनी मुर्गी के साथ **हंड़िया** पीने लगे थे। दुर्भिक्ष में देवताओं के सोमरस से भी दुर्लभ पेय था हंड़िया।**पोचई** से बहुत महंगा।" [78]

" वही, कि तुम तेलियागढ़ी के किले पर **डुग्गू** बजा रहे हो।" [79]

" एक **पाठी** भी।" [80]

" **भगई** पहनते बड़े होने वाले अरण्य-शिशु के लिए सिले नए कपड़े एक उपलब्धि थे।" [81]

"स्वयं के लिए एक पाव **महकौवा** तंबाकू भी था।" [82]

" **मोगल** आए, **पैठान** आए, **मरहट्ठे** आए, **दीकू** लोगों ने पहाड़िया लोगों का सारा राज-पाट छीन लिया।" [83]

" **भतरा कटौनी,** बेटा चबौनी तोरा घर में आग लगे रेsss ।**मांग धुलौनी, सैटभतरी तोरा 'एथी'** में कोढ़ी फूटो रेsss ।" [84]

" ना **आयो**। डरा नहीं।" [85]

" उत्तर पहाड़ियों में भिलमा और इमलियाटांड़ गाँव में उतर कर **लेरु-पठरू** उठाने लगा था बाघ।" [86]

" हमारी औरतें भी घटवालों-खेतौरियों की औरतों की तरह रंगीन **लुगा-झुला** पहनेंगी।"[87]

" मांदल-मदिरा से निरपेक्ष जबरा और फागुन अखर से निकलकर गाँव के **कोड़बाह-आड़ा** की ओर चल पड़े थे।" [88]

" बारात बिगड़ गयी थी तो तेरे बाबा ने अपना पालतू **खस्सी** कटवा कर हीरा का मान बचाया था।" [89]

" यह **कपरबत्था** तेरा है।" [90]

" **पनछोछर** लगने लगा था गुड़।" [91]

" **चारगोड़वा** से भले मात डरना, पर आगे एक **दुगोड़वा** भी खड़ा है, सो ध्यान रहे भौजी।" [92]

" **दसगांवां** के लोगों के पास **अनठेकान** रूपया है तो वे भरें मालगुजारी।" [93]

" हम तो **सुम्ह** में छटपटा कर मर जाएंगे।" [94]

" पहले किसी गाँव के बाल बच्चे **टूअर** नहीं हुए क्या?" [95]

" **दमामे** पर चोट मारता तिलका चिल्लाने लगा था...**हुल**...**हुल**...**हुल**...!" [96]

" तुम्हारे **गोड़धोवन** से नाहाऊँगी **गोड़ाइत**।" [97]

" गोल-गोल बात पेट में गया नहीं कि पेट में **रूखखी** नाचने लगी?" [98]

" लेकिन **एकऔंझ** का मुंह देखना ठीक नहीं।" [99]

" तो क्या? **दूघपीवा लइका** हो?" [100]

" उनके **गर्दन पूज** कर हम इधर आ गए।" [101]

" दुर्र रे **मुदइया** सपना... ।" [102]

" **उफर परे** कंपनी।" [103]

ध्वन्यात्मक शब्द :

ध्वन्यात्मक शब्द ऐसे शब्द हैं जिनके प्रयोग द्वारा ध्वनि का आभास होता है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में राकेश जी ने कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जिसके कारण प्रस्तुत उपन्यास सजीव-सा प्रतीत होता है। जैसे:

" **खिखि्खर** की भांति **खिक्-खिक्** हँसने लगी थी चैती।" [104]

" तेज हवा से **चिट्-चिट्** बजती पत्तों की आहट के प्रति भी सशंकित रहते हैं।" [105]

" अचानक जबरा के सजग कानों में **'चपड़-चपड़'** की धीमी आवाज!" [106]

" हाट में **झन्न-झन्न** रूपया बरस रहा था।" [107]

" जब **किर्रर्र...किर्रकोंच...किर्रकोंच...** उल्लू चीखा था।" [108]

लोकोक्ति :

लोक में प्रचलित उक्ति को ही लोकोक्ति कहते हैं।"*किसी समाज ने जो कुछ अपने लम्बे अनुभव से सीखा है उसे एक वाक्य में बाँध दिया है। इसे कहावत, जनश्रुति आदि भी कहते हैं।*"[109] राकेश जी ने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में भी कई लोकोक्तियों का प्रयोग किया है, जैसे "*जो गुड़ खाए, सो कान छिदवाए।*"[110] , "*जो तीन भेली गुड़ उठावे, सो मांझी ठान पावे।*"[111]

निष्कर्षत: 'हुल पहाड़िया' उपन्यास का भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है। लेखक ने तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशज शब्दों का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया हैं। इस उपन्यास में पहाड़िया आदिवासी के संघर्षों एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के क्रूर नीतियों को केंद्र में रखा गया है, इस कारण लेखक ने पात्रनुकुलता एवं विषयानुकूल स्थानीय एवं अंग्रेजी शब्दों का भी प्रचुरता के साथ प्रयोग किया हैं। इसके साथ ही पहाड़िया आदिवासी समाज में प्रसिद्ध लोकोक्तियों का उल्लेख भी उपन्यास में मिलता है।

(ख) शैली :

'शैली' अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' का अनुवाद है। शैली का सामान्य अर्थ हैं - ढंग, तरीका। परन्तु साहित्य में 'अपने विचार, भावना, अनुभूति आदि का लेखक द्वारा प्रकट करने के ढंग' को ही शैली कहा जाता है। "*शैली अभिव्यक्ति के उन गुणों को कहते हैं जिन्हें लेखक या कवि अपने मन के प्रभाव को समान रूप में दूसरों तक पहुंचाने के लिए अपनाता है।*" [112]

प्रभावशाली शैली के आभाव में उपन्यास अधूरा रह जाता है और उसकी रोचकता समाप्त हो जाती है। जिस प्रकार मनुष्य के लिए आभूषण अनिवार्य होता है उसी प्रकार उपन्यास के लिए शैली अनिवार्य होती है। राकेश जी ने 'हल पहाड़िया' उपन्यास में विभिन्न प्रकार के शैलियों जैसे - वर्णनात्मक शैली, संवादात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, काव्यात्मक शैली और विश्लेष्णात्मक शैली का प्रयोग किया है।

1.वर्णनात्मक शैली :

वर्णनात्मक शैली में कथाकार वर्णन-कथन के माध्यम से कथा की रचना करते हैं। इस शैली में लेखक कथानक, पात्र और घटनाओं का वर्णन किसी तीसरे व्यक्ति के रूप में करता है। इसमें लेखक अपनी कल्पना एवं अनुभूति को अपने कथा के पात्रों और घटनाओं के साथ जोड़कर उनका वर्णन करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में राकेश जी ने किस्सागोई शैली के साथ वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में राकेश जी पहाड़िया जनजाति के आदि विद्रोहियों का वर्णन करते है- "*फिरंगियों को जंगल तराई की दीवानी मिली थी तो नाला, जामताड़ा और कुड़हईत में कम्पनी सरकार का विरोध करते हुए लड़ मरा था रामना आहड़ी। मनचला पहाड़ की तराई पहाड़िया लोगों के रक्त से तर हो गई थी! कम्पनी सरकार की कर वसूली के विरुद्ध लड़ मरा था मनसा पहाड़िया। उधवानाला के पठार पर करिया पुजहर, चेंगरु सांवरिया और डोम्बो पहाड़िया के रक्त छींटे अभी तक गीले थे।*" **113**

राकेश जी दोहर का अर्थ समझाते हुए प्रकृति का वर्णन करते हैं - "*दोहर! अर्थात् वह भूमि, जो पूरे वर्ष अपनी कोख में नमी धारण किये रहती हो। गाँव के पश्चिम में थी ऐसी भूमि, परन्तु दुर्गम, दुरूह, दुर्भेद्य! चारों और ऊँचे पहाड़ थे। पहाड़ों के बीच थी ऐसी खाली जगह, मनो प्रकृति ने विशाल कुआँ गढ़ा हो।*

उस कुएं के पूरब में बुलबुलिया पहाड़ खड़ा था। पहाड़ के धड़ से एक चश्मा फूटता था। धरती के गर्भ से बारहमासी ठन्डे बुलबुले निकलते थे पानी के। निरंतर बुलबुलाता जल, इस लिए यह पहाड़ था बुलबुलिया पहाड़, निचे गिरता पानी, बुलबुलिया झरना जो नीचे उस कुएं में गिरता था। इसी जल की तन्वंगी धरा थी बुलबुलिया नदी, जो मात्र आधा किलोमीटर तक यात्रा करती थी और सामने वाले पहाड़ की जड़ में बनी प्राकृतिक दरार में समा जाती थी। पहाड़ी के गर्भ से निकला जल वापस पहाड़ में। " **114**

शिकार का बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन राकेश जी ने अपने प्रस्तुत उपन्यास में किया है- "*जबरा ने धनुष पर बाण चढ़ा लिया था। तीर की पूंछ को प्रत्यंचा पर रखकर तीर को शक्ति भर कंधे की और खिंच रखा था। आँखें नदी की धरा का अनुमान लगाती दौड़ रही थीं... और दिखा था।*

जिन्हें बाघ सायास भी नहीं छुपा सकता था, वे बाघ की आँखे थीं। दो आँखे मानो दो बड़े-बड़े जुगनू दमक रहे थे। छः अंगुल की दूरी पर दो जलती आँखें,बाघ की।

कानों तक खिंची धनुष की डोरी पर जकड़ी उंगलियां ढीली पड़ी थीं। दमकती अडोल गोलियों के बीच की जगह लक्षित कर फैंका गया था तीर। निशाना अचूक था।" **115**

'हल पहाड़िया' उपन्यास में राकेश जी ने प्रेम कथा का वर्णन भी रोचक ढंग से किया है - "*महुरांव में बांसुरी-तुईला बजाने वाली बात गुमना के लिए संदर्भहीन थी। अनावश्यक, परन्तु यह नितांत अर्थहीन वाक्य नहीं था। महुरांव में अपनी उपस्थिति की बात बताते फागुन ने तिरछी आँखों से गेंदी को देखा था।*

यह गेंदी के लिए नेह-निमंत्रण था। गेंदी की आँखों की चमक और फिर पलकों का गिरना चुगली कर गया था कि गेंदी ने फागुन का परोक्ष निमंत्रण स्वीकार कर लिया था।"**116**

2. संवादात्मक शैली :

संवाद का होना नाटक के साथ-साथ उपन्यास में भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कथा-साहित्य में पात्रों के बीच वार्तालाप का माध्यम संवाद होता हैं। संवाद के कारण ही पात्रों में और कथा में सजीवता आती है। संवाद के माध्यम से ही लेखक पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन करता है और कथानक को गति प्रदान करता है। राकेश जी ने इस उपन्यास में संवाद शैली का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है। कुछ उद्धारण निम्न हैं -

प्रथम संवाद : "*ले, अब खून बंद हो गया। मैं तो यह बताने आई थी कि कल लकड़ी लेने मैं पहाड़ पर गई तो वह मिली थी।*"

" *कौन वह?*" *जबरा कटी उंगली निरख रहा था।*

" *भौजी।*"

"*दुर्रर्र!*"...

"*इतनी लाज थी तो ब्याह क्यूँ किया?*" *चैती ने कृत्रिम रोष दिखाया था।*

" *चल भाग यहां से। मुझे काम करने दे।*" *जबरा का क्रोध भी दिखावे का ही रह गया था।*

" *सच कहती हूँ रे भाई। बेचारी के हाथों में लकड़ी काटते-काटते ठेले पड़ गए हैं। कब लाएगा तू उसे?* " *चैती फिर नीम की जड़ पर जा बैठी थी।*"[117]

भाई-बहन के इस आपसी संवाद से कथानक में रोचकता एवं रसात्मक का समावेश करता हुआ लेखक भावी घटनाओं का संकेत करता है।

द्वितीय संवाद : रात के अंतिम प्रहर में जब पहाड़िया वर्तमान समय की समस्याओं और भविष्य की भोजनाओं पर विचार-विमर्श के लिए कर रहे थे तब उनके बीच अगस्टस क्लीवलैण्ड भी शामिल हो गया था। पहाड़ियों को अपने वश में करने की योजना ते तहत वह उनसे वार्तालाप करता है- "*जंगलतरेय में कितना मांझी लोग हय?*" *क्लीवलैण्ड ने पूछा था।*

" *तीन सौ तो जरुर होंगे।*" *चांदो भी अपने गाँव का मांझी था, बताया था।*

"*परगनाइत कितना?*"

" *इतना ही। कम हों तो हों काहे कि किसी-किसी गाँव में गाँव का मांझी ही परगनैत का काम भी देखता है।*"

" *इधर का गांव बोत दूर-दूर हय! बाहरी दुश्मन आता है तो कैसे लड़ता है लोग?*" *क्लीवलैण्ड ने पूछा था।*

" *पहाड़ पर आग जलाते हैं।*" *कुंजरा ने बताया था।*

"*तब तक तो बोत नुकसान कर देगा दुश्मन! हमारे पास एक उपाय है पहाड़िया गाँव की रखवाली के लिए*"

" *कौन उपाय ?*" *उत्सुक हुआ था जबरा।*

" जितने भी गाँव हैं, हर गाँव से अच्छा निशाना लगाने वाले जवान जमा करो। हर परगना ऐसा जवान लोग का एक टोली बनाए। इनमें से एक आदमी को टोली का कमांडर, माने नेता बनाओ। यह टोली पूरे परगना में गश्त करेगी।...

जंगल के बाहर का दीकू लोग बन्दूक लेकर आता हय। पहाड़िया भाई को दिक् करता हय। इसलिए हम बोला कि पहाड़िया गांव-परगना एक बनाकर ही रहे। पहाड़िया भी ताकत जमा करें।

चिल्मिली साहब की बात... दंग पहाड़िया! कैसी बात कह रहा था। चिलमिली साहब ? पहले कभी कम्पनी के आदमी ने चाहा था ऐसा ? जो कम्पनी पहाड़िया लोगों से शत्रुतापूर्ण व्यवहार रक्ति आई थी, उसी कम्पनी का साहेब बहादुर पहाड़िया लोगों की एकता की बात सोच रहा था! पहाड़िया लोगों को शक्तिशाली देखना चाहता था ?

क्यों था ऐसा? उलझन थी जबरा के दिमाग में। सुलझा नहीं पा रहा था जबरा का मांझी का मस्तिष्क! क्लीवलैंड को सुन रहा था जबरा

"परगना की ऐसी हर टोली से एक-एक बहादुर पहाड़िया को चुनकर हम बोगालपोर ले जाएगा।"

"भागलपुर! काहे को?" जबरा पूछ बैठा था।

"बढ़िया निशाना लगाने वाले को हम वहां बन्दूक देगा। कम्पनी पहाड़िया लोग को बन्दूक चलाना भी सिखाएगा। कम्पनी पहाड़िया का दुश्मन नहीं। कम्पनी पहाड़िया का दोस्त! कम्पनी पहाड़िया लोग का फौज बनाएगा।"

इससे क्या होगा? हमारा भला या बुरा?" कुंजरा कुछ सोचकर बोला था।

"भला होगा कुन-जरा। जो पहाड़िया का दुश्मन, सो कम्पनी का भी दुश्मन! जो कम्पनी का दुश्मन, सो पहाड़िया का भी दुश्मन! हम एक दूसरे का लड़ाई मिलकर लड़ेगा।"[118]

इस लम्बे संवाद से आदिवासियों का चिलमिली साहब (क्लीवलैंड) पहाड़िया आदिवासियों के मांझियों एवं पर्गानैतों को अपने झांसे में लेता है और कम्पनी को पहाड़िया आदिवासियों का हमदर्द और शुभचिंतक दिखाकर आदिवासी पहाड़िया लोगों को कम्पनी की सेना में भर्ती कर उनका इस्तेमाल दुसरे आदिवासियों के विरुद्ध करने की कम्पनी की दूरगामी भीजना पर काम करता है। इस संवाद से आदिवासियों का भोलापन और कम्पनी के अधिकारियों का दोगलापन, साजिश आदि रेखांकन लेखक करता है जिसे आदिवासी समाज उस समय नहीं समझ पाता है। कम्पनी के अधिकारीयों के मुँह में राम बगल में छरी है जिससे वे पहाड़िया आदिवासियों के 'हिलरेंजर्स' वाली सेना का गठन कर इसका इस्तेमाल दुसरे आदिवासियों यथा मुण्डा और संतालों आदि के विरुद्ध करना चाहते हैं जिससे आदिवासी एकता समाप्त हो जाये और एक का इस्तेमाल दुसरे के विरुद्ध करते हुए एक एक कर सारे आदिवासी जनजातिय

क्षेत्रों को गुलाम बना लिया जाए। इसी नीति पर चल कर तो कम्पनी ने पलासी और बक्सर का युद्ध जीता था और बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी हासिल की थी। राकेश जी इस संवाद के द्वारा कम्पनी एवं अंग्रेजों के इसी नीति का पर्दाफाश करते है।

3. चित्रात्मक शैली :

चित्रात्मक शैली में कथाकार ऐसे छोटे-बड़े दृश्य का वर्णन करता है जिसे पढ़कर पाठक के मनोमस्तिष्क के सामने उस दृश्य का चित्र बन जाता है। इस शैली के प्रयोग से कथाकार अपने काथाओं को सजीव और रोचक बनता है जिसे पढ़कर पाठक का मन कथानक में लगा रहता है। राकेश जी ने प्रस्तुत उपन्यास में चित्रात्मक शैली का प्रयोग कई स्थानों पर किया है। यथा:

सुगना पहाड़िया अपने बेटे जबरा के साथ ससुराल से घर के लिए निकलता है और तेलियागढ़ी के दर्रे को पार कर हो होता है। लेखक उसका वर्णन चित्रात्मक शैली में करता है-

"ससुराल से गाँव वापस लौट रहा था सुगना पहाड़िया। कंधे से लटका था झोला, जिसमें धोती थी। धोती के अलावा सवा रुपये भी मिले थे विदाई में। एक पाठी भी।

सुगना के कंधे पर चढ़ा बैठा था नन्हा जबरा, दोनों पांव आगे लटकाए। जबरा को भी मामा ने एक पाठी और नए कपड़े दिए थे।"[119]

अंग्रेजों के साथ युद्ध में मनिका को गोली लगने से मृत्यु हो जाती है। लेखक ने उसका वर्णन चित्रात्मक शैली में किया है -

"फागुन ने औंधे गिरे मनिका को सीधा किया था। मर चूका था मनिका। हदस गया था फागुन पहाड़िया। मनिका की पथराई आँखें !

मनिका के सिर पर बंधी पगड़ी खुल गई थी। शालवृक्ष की छाल ललाट से सरक चुकी थी। मनिका की कनपटी में कनिष्ठा उंगली के व्यास जितना बड़ा सुराख ! भलभालाने लगा था रक्त!"[120]

अंग्रेजों के साथ आदिवासियों के छापामार युद्ध का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है-

"अपने बंदूकधारियों को उत्साहित करता व्हीलर आगे बढ़ा था। बंदूकधारी भी! मात्र दस कदम और झाड़ियों से तीर उबलने लगे थे। शांय-शांय-सट्ट-सट्ट !

अचानक 'हुल-हुल' का रोर और तीरों की वर्षा...! व्हीलर की जांघ में एक तीर जा धंसा था। पांच-सात बंदूकधारी भी जमीन पर लोटते हुए ऐड़ियां रगड़ने लगे थे। एक तीर व्हीलर के घोड़े की छाती में धंस गया था। पीड़ा से बिदका घोड़ा पिछले पैरों पर खड़ा हिनहिनाने लगा था।"[121]

भारतीय रेलवे स्टेशनों की स्थिति एवं वहां की जानेवाली घोषनाओं को यथार्थवादी शैली में यथावत प्रस्तुत करते हुए लेखक लिखता है -

"अचानक दो प्लेटफर्मो को जोड़ने वाले पुल पर लगा माइक खटखटाया। स्टेशन प्रबंधन ने घोषणा की, " हमें यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि क्षतिग्रस्त रेलमार्ग पर सामान्य स्थिति बहाल की जा चुकी है।2454, नयी दिल्ली-रांची राजधानी एक्सप्रेस शीघ्र ही आगे की यात्रा पर रवाना हो सकेगी। यात्रीगण कृपया अपना स्थान ग्रहण करें। आपके सहयोग के लिए भारतीय रेल आपकी आभारी है धन्यवाद! यूअर अटेंशन प्लीज..."

"थैक्स गॉड।" जेनी मानो जमानत पाकर हवालात से मुक्त हो रही थी।"[122] उपर्युक्त उद्धारण से पाठक के सामने रेलवे स्टेशनों का दृश्य स्पष्ट हो जाता है।

4. **पूर्वदीप्ति शैली :**

पूर्वदीप्ति शैली को फ़्लैश बैक शैली के नाम से भी जाना जाता है। इस शैली में पात्र विगतसमय में घटित कुछ घटनाओं को याद करके कथावस्तु को आगे बढाता है। राकेश जी प्रस्तुत उपन्यास में इस शैली का प्रयोग कुछ जगहों पर करते हैं। यथा :

रूपनी के साथ अपनी पहली भेंट को जबरा याद करता है - *"घुंघराले केशों का जूड़ा। जूड़े में लिपटी थी फूलों की माला। हाथ में रंगीन कांच की चूड़ियाँ। ढेर सारी! फूलदार कपड़े में अरहर की डंटल सी ठोस काया। कानों में चांदी के झुमके। माथे के बीचो बीच कढ़ी मांग की सीध में ललाट पर कुंकुम रंग*

की बड़ी सी टिकुली। पनकौवे के चिकने गात जैसे चमकते रूपनी के गोरे चेहरे पर पसीने की असंख्य बुंदियाँ थिरक रही थीं।"[123]

5. काव्यात्मक शैली :

कथाकार अपनी रचनाओं को और ज्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए अपनी रचनाओं के बीच-बीच में काव्यात्मक शैली का भी प्रयोग करते हैं। काव्यात्मक शैली के अंतर्गत गीत, कविता, शायर-शायरी आदि आते हैं। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास आदिवासी समाज से सम्बंधित उपन्यास है और आदिवासी का जीवन लोक जीवन के साथ गहराई से जुड़ा हुआ रहता है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में काव्यात्मक शैली का बहुत प्रयोग हुआ हैं जो उपन्यास को रोचक बनाने के साथ-साथ प्रमाणिक भी बनाता है। जैसे -

जबरा के तेलियागाढ़ी वाला सपने (स्वतंत्र पहाड़िया राज्य का सपना) में उसका पिता सुगना मांझी गीत गाता दिखाई देता है -

" *तेलियागढ़ के तीर की पीर*

मत बिसरा पहाड़िया वीर

मांदल पीट के मांझी नाचे

गगन दमामा बाजे

बाजे गगन दमामा रेऽऽ "[124]

युवा गृह में नवयुवक रात का खाना खाने के पश्चात सोने चले जाते हैं और उस जगह पर सभी साथ में गीत भी गाते है-

"*पहाड़ की ढाल पर मकई का खेत*

खेत की मेंड़ पर

बजाऊंगा बांसुरी

टप्प्- टिप्प चुएंगे महुवे के फूल

महुआ चुनते बजेगी तेरी पायल

गरजेंगे जब चैत के बादल

छुप जाना मेरी छाती में तुम"[125]

क्रुद्ध देवी मनसा विषहरी वाले सपने में भी फागुन पैरों में घुंघुरू बांधे, माथे पर मोरपंख साजे मांदल बजाता नाचने लगा था। गाने लगे थे सैकड़ों-हजारों अदृश्य कंठ फागुन के साथ...

"*जिए जिए तिलका मांझी*

जिए जिए हुल!

तेलियागढ़ कोटा- परकोटा

तिलका वीर ने झंडा ठोंका

हुल-हुल हुलमाहा नाचे

गगन दमामा बाजे" [126]

चिलमिली साहाब (अगस्टस क्लीवलैण्ड) के घोड़े पर सवारीनकालकर एक आदिवासी बच्चा लाठी के नकली घोड़े पर सवार होकर चल रहा था और दूसरे पहाड़िया आदिवासी बच्चे उसके पीछे-पीछे चलते हुए यह गीत गाते जा रहे थे-

" *साहेब-साहेब तेरा घोडा*

टप-टप... टप्पा-टप

साहेब-साहेब तेरा जूता

चिलमिल, चिलमिल!"[127]

6. फैंटसी शैली :

साहित्य के क्षेत्र की यह नवीनतम शैली है जिसे फैंटसी शैली और स्वप्न कथा शैली कहा जाता है। जटिल यथार्थ की अभिव्यक्ति जब यथार्थवादी शैली में कठिन हो जाती है तब लेखक फैंटसी शैली या स्वप्न कथा शैली का प्रयोग करते हैं। जिसमें कम शब्दों में गंभीरता के साथ जटिल यथार्थ को प्रस्तुत किया जाता है। हिंदी साहित्य के इतिहास में ज्यादातर इस शैली का प्रयोग काव्य सृजन के क्षेत्र में किया गया है। 'हुल पहाड़िया' एक ऐतिहासिक

उपन्यास है। इतिहास में जबरा पहाड़िया और तिलका मांझी जैसे नाम वाले दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है और दोनों का चरित्र एक दूसरे से भिन्न दिखाई देता है। अंग्रेज इतिहासकार जबरा पहाड़िया को लुटेरा साबित करते हैं तो भारतीय मानस तिलका मांझी को आदि विद्रोहियों एवं प्रथम स्वतंत्रता सेनानियों में से एक मानता है। एक ही व्यक्ति के ये दो रूप इतिहास और लोकमानस में उल्लिखित हैं। जबरा पहाड़िया लुटेरा से कंपनी के 'हिलरेंजर्स' का कमांडर और अंत में विद्रोह का नेता तिलका मांझी कैसे बन गया- इस प्रश्न पर भारतीय इतिहास और इतिहासकार मौन हैं। राकेश जी ने इस फैंटसी शैली का प्रयोग कर इस प्रश्न का जवाब अपने ढंग से देने का प्रयास किया है।

अगस्टस क्लीवलैंड छद्म सद्भाव और मैत्री भाव दिखाकर और जबरा पहाड़िया को ब्लैकमेल कर पुरे पहाड़िया आदिवासियों, उनके मांझियों और गौड़ाइतों को 'हिल्रेंजर्स' नामक सैनिक टुकड़ी के गठन के लिए सहमत कर लेता है और उसका कमांडर जबरा पहाड़िया को बनाता है। बाद में प्रशिक्षण के बाद इस सैनिक टुकड़ी का इस्तेमाल दुसरे आदिवासी विद्रोहों को कुचलने के लिए कम्पनी की तरफ से किया जाता है। 'हिल्रेंजर्स' इसमें सफल भी होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था रामगढ़ के अभियान में 'हिल्रेंजर्स' की सफलता जिससे अगस्टस क्लीवलैंड का प्रयोग सफल रहता है। क्लीवलैंड के लिए यह सफलता अद्भुत थी, जो कम्पनी के नीति के एकदम अनुकूल थी। यह एक उपलब्धि थी। जंगल के संसाधनों का जंगल के विरुद्ध उपयोग और कम्पनी को बिना कुछ क्षति पहुंचाये आदिवासियों के विद्रोह का शक्ति से दमन। रामगढ़ के अभियान

में जबरा पहाड़िया के नेतृत्व में 'हिल्रेंजर्स' के पहाड़िया सैनिक आदिवासी मुंडा और संताल आदिवासी विद्रोहियों को मर गिराते हैं। इस प्रकार अनजाने में पहाड़िया आदिवासी अपने ही पडोसी मुंडा और संताल आदिवासियों की हत्या करते हैं। इसे आदिवासियों की एकता भंग हो जाती है। और कम्पनी को फ़ायदा होता हैं। दो की लड़ाई में तीसरे को फ़ायदा। जब मुंडा और संताल आदिवासियों की हत्या और उनका पूरा दमन कर 'हिल्रेंजर्स' लौट रहे थे तब रास्ते में रात को सपने में जबरा पहाड़िया को आदिवासियों की देवी मनसा विषहरी का सपना अत है। यहीं पर लेखक ने फैंटसी शैली या स्वप्न कथा की शैली अपनाती है जो जबरा पहाड़िया के चरित्र परिवर्तन और तिलका मांझी के रूप में उसके रूपंतार्ण के कारणों एवं परिस्थितयों को व्याख्यायित करते हुए स्पष्ट करती है- "*क्रुद्ध देवी मनसा विषहरी! गुस्से में पूछ रही थी देवी,*

"मुंडा, संताल, पहाड़िया, बिरहोर, सब एक ही पिल्चू हड़ाम की संतान हैं। एक ही पिलचू बूढ़ी के बच्चे! तू पहाड़ का मुकुट पहाड़िया, कम्पनी का चाकर होकर अपने भाइयों पर ही तीर मारने लगा रे ?... चुप रे झूठा।! लबार! सिंगबोगा ने तुम पहाड़िया लोगों को पहाड़ दिया। पहाड़ पर जंगल उगाया। झरना दिया। शिकार दिए। भर सूप महुआ दिया और दिया मुट्ठी भर स्वाभिमान। उसे तूने बहुरंगी चिल्मिली के पैर पर रख दिया ? किस हक़ से रे बेईमान ?... सच कहा, पर किया क्या रे ? दूसरों को समझाना था, पर तू तो कम्पनी की पगड़ी पहनने लगा। अपनों के खून से धरती लाल करने लगा। तूने पहाड़िया समाज के साथ धोखा किया रे जबरा।... तू अपने गाँव का मांझी

है। अपने गाँव का बाबा है। तेरे लिए अपनी देह के जन्माये बच्चे ही अपने हैं। बाकी गांव अपना नहीं ? अपने दो बच्चों के लिए तूने कितने बच्चे टूअर किये हैं, कितनी गोद उजाड़ी हैं, इसका कोई हिसाब रखता है तू ?... देवी ने आवाज लगाई थी तिलका को।... चिल्ला उठी थी, काट दे! जबरा को अभी काट तिलका, काट दे।...जबरा पहाड़िया का कटा हुआ शीश लुढ़कता हुआ देवी मनसा विषहरी के पैरों पर पड़ा हुआ था। देवी ने जबरा की बलि ले ली थी। फरसा फेंक कर दमामा बजाने लगा था तिलका।...देवी के सिंहासन के पीछे से निकल कर सामने आया था फागुन! पैरों में घुंघरू बांधे, माथे पर मोरपंख साजे फागुन मांदल बजाता नाचने लगा था। गाने लगे थे सैकड़ों-हजारों अदृश्य कंठ...

"जिए जिए तिलका मांझी

जिए जिए हुल!

तेलियागढ़ कोटा- परकोटा

तिलका वीर ने झंडा ठोंका

हुल-हुल हुलमाहा नाचे

गगन दमामा बाजे

...अशांत हो उठी थी घाटी। अशांत था अरण्य। अशांत थे पहाड़, चट्टानें। हर ओर वही अनहद-नाद...हुल-हुल-हुल!.. मानो युद्ध के देवता का आवाहन कर रहा था

तिलका। शरीर पर स्वेद के धारे बह चले थे, पर पूरी ताकत से दमामा पीट रहा था तिलका।" [128]

इस फैंटसी या स्वप्न कथा की समाप्ति फागुन के आने और तिलका के जगाने के बाद होती है। फागुन उसके बाद चिलमिली साहेब और कम्पनी के धोखा, चालबाजी, विश्वासघात की सूचना तिलका को देता है। वो 'हिलरेंजर्स' को रामगढ़ भेजकर पहाड़िया आदिवासियों के वास्तविक हमदर्द सुल्तानाबाद की रानी सर्वेश्वरी देवी को पद्च्युत कर नजरबन्द कर लेते हैं और उनकी जमींदारी हड़प लेते हैं। परिणामस्वरूप तिलका कम्पनी और अंग्रेजों की, दुरंगी चालों एवं कूटनीति को समझ जाता है और 'हुल' (विद्रोह) का निर्णय लेता है।

" *जाग तिलका, जाग! तू यहां चैन से सोया है और उधर राज लुट गया रे।*" *फागुन की आवाज में घायल हिरन की पीड़ा थी।*

फागुन के निकट ही बैठा था चांदो और तिभुवन भी। फागुन कह रह था, "*तुझे इधर भेजकर चिलमिली साहेब आयो रानी के किले पर चढ़ बैठा रे।आयो राने का राज-पाट कम्पनी ने लूट लिया रे तिलका!*"

"*आयो कहां है ?*"

"*किसी को पता नहीं। सुनते हैं चिलमिली ने आयो रानी के किले को ही जेहल बना दिया है। आयो रानी का कहीं आना-जाना बंद। कोई आयो से भेंट नहीं कर सकता।*"

फागुन की सूचना सही थी। किल्वलैंड ने सुलतानाबाद की जमींदारी हड़प ली थी। रानी सर्वेश्वरी को पद्च्युत कर नजरबन्द कर दिया था।" [129]

निष्कर्षत: 'हुल पहाड़िया' उपन्यास लेखन में राकेश जी ने वर्णनात्मक शैली, संवादात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली और काव्यात्मक शैली आदि का प्रयोग किया हैं। जो उनके कथ्य को पूरी तरह से अभिव्यक्त करने के साथ-साथ रोचक भी बनाती है।

*****

संदर्भ सूची :

1. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, डा. उदय प्रताप सिंह, भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा, पृ. 25
2. वही, पृ. 24
3. वही, पृ. 486
4. डॉ.हरदेव बाहरी, हिंदी भाषा, पृ. 134
5. राकेश कुमार सिंह, हल पहाड़िया, पृ. 11
6. वही, पृ. 11
7. वही, पृ. 12
8. वही, पृ. 12
9. वही, पृ. 24
10. वही, पृ. 27
11. वही, पृ. 32
12. वही, पृ. 35
13. वही, पृ. 37
14. वही, पृ. 42
15. वहीं, पृ. 44
16. वही, पृ. 45
17. वही, पृ. 65
18. वही, पृ. 111

19. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 120

20. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, डा. उदय प्रताप सिंह, भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा, पृ. 487

21. राकेश कुमार सिंह, हल पहाड़िया, पृ. 12

22. वही, पृ. 12

23. वही, पृ. 15

24. वही, पृ. 15

25. वही, पृ. 15

26. वही, पृ. 24

27. वही, पृ. 33

28. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 64

29. वही, पृ. 213

30. वही, पृ. 226

31. संजीव कुमार, सामान्य हिंदी, पृ. 60

32. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 11

33. वही, पृ. 22

34. वही, पृ. 36

35. वही, पृ. 198

36. वही, पृ. 43

37. वही, पृ. 49

38. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 56

39. वही, पृ. 57

40. वही, पृ. 139

41. वही, पृ. 29

42. वही, पृ. 85

43. वही, पृ. 85

44. वही, पृ. 87

45. वही, पृ. 89

46. वही, पृ. 91

47. वही, पृ. 92

48. वही, पृ. 93

49. वही, पृ. 93

50. वही, पृ. 95

51. वही, पृ. 96

52. वही, पृ. 104

53. वही, पृ. 131

54. वही, पृ. 143

56. वही, पृ. 144

57. वही, पृ. 144

58. वही, पृ. 145

59. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 204

60. वही, पृ. 57

61. वही, पृ. 91

62. वही, पृ. 149

63. वही, पृ. 242

64. वही, पृ. 243

65. वही, पृ. 243

66. वही, पृ. 245

67. वही, पृ. 245

68. वही, पृ. 261

69. वही, पृ. 14

70. वही, पृ. 15

71. वही, पृ. 17

72. वही, पृ. 17

73. वही, पृ. 17

74. वही,, पृ. 19

75. वही, पृ. 19

76. वही, पृ. 19

77. वही, पृ. 20

78. वही, पृ. 20

79. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 22

80. वही, पृ. 23

81. वही, पृ. 23

82. वही, पृ. 23

83. वही, पृ. 23

84. वहीं, पृ. 30

85. वही, पृ. 31

86. वही, पृ. 36

87. वही, पृ. 44

88. वही, पृ. 48

89. वही, पृ. 49

90. वही, पृ. 50

91. वही, पृ. 63

92. वही, पृ. 75

93. वही, पृ. 124

94. वही, पृ. 169

95. वही, पृ. 206

96. वही, पृ. 224

97. वही, पृ. 249

98. वही, पृ. 250

99. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 266

100. वही, पृ. 266

101. वही, पृ. 291

102. वही, पृ. 320

103. वही, पृ. 320

104. वही, पृ. 35

105. वही, पृ. 37

106. वही, पृ. 39

107. वही, पृ. 44

108. वही, पृ. 53

109. संजीव कुमार, सामान्य हिंदी, पृ. 143

110. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 12

111. वही, पृ. 15

112. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, डॉ. उदय प्रताप सिंह, भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा, पृ. 323

113. राकेश कुमार सिंह, हल पहाड़िया, पृ. 11

114. वही, पृ. 16

115. वही, पृ. 39

116. वही, पृ. 64

117. वही, पृ. 34-35

118. राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, पृ. 198-199

119. वही, पृ. 22-23

120. वही, पृ. 271

121. वही, पृ. 273

122. वही, पृ. 295

123. वही, पृ. 78

124. वही, पृ. 32

125. वही, पृ. 66-67

126. वही, पृ. 224

127. वही, पृ. 182

128. वही, पृ.222-225

129. वही, पृ.227

उपसंहार

हिन्दी साहित्य में आदिवासी समुदाय पर कम ध्यान दिया गया है। आदिवासियों के संघर्ष, अस्मिता का संकट, सामाजिक-राजनीतिक स्वतंत्रता आदि पर हिंदी साहित्यकारों का ध्यान कम गया है। इस कमी को पूरा करने का प्रयास राकेश कुमार सिंह ने अपने कथा साहित्य द्वारा किया है। केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि भारतीय इतिहास में भी आदिवासी संघर्षों एवं स्वाधीनता संग्राम में उनके योगदान को उपेक्षित किया गया है जिस कमी की तरफ राकेश कुमार सिंह इशारा करते हैं और अपने कथा लेखन के द्वारा उस कमी को पूरा करने का गंभीर प्रयास करते हैं। रसायन विज्ञान का छात्र होते हुए भी राकेश कुमार सिंह ने हिंदी कथा साहित्य लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। उनके कथा साहित्य में आदिवासी जीवन और उनके संघर्षों का व्यापक चित्रण मिलता है।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंधको चार अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय 'रचनाकार का परिचय और विषय की अवधारणा' है, जिसमें कथाकार राकेश कुमार सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी जनजीवन पर लिखने वाले साहित्यकारों में राकेश कुमार सिंह का अपना एक विशिष्ट स्थान है। उनका जन्म झारखण्ड के पलामू जिला के ग्राम गुरहा में 20 फ़रवरी 1960 ई. को हुआ था। उन्होंने विज्ञान शाखा की पढ़ाई की तथा रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर एवं विधि स्नातक की भी डिग्री प्राप्त की। वर्त्तमान में वे

हरप्रसाद दास जैन महाविद्यालय, आरा, बिहार के रसायन विज्ञान विभाग में अध्यापन का कार्य कर रहे हैं ।

राकेश कुमार सिंह ने उपन्यास, कहानी और किशोर उपन्यास लिखे हैं। अभी तक उनके कुल पांच उपन्यास प्रकाशित हुए हैं- 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश' (2003), 'पठार पर कोहरा' (2003), 'जो इतिहास में नहीं हैं' (2005), 'साधो यह मुर्दों का गाँव' (2008) और 'हुल पहाड़िया' (2012) । इनके कहानी संग्रहों में'ओह पलामू' (2004), 'हांका तथा अन्य कहानियां' (2006), 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' (2006), 'महुआ मांदल और अँधेरा' (2007)आदि के नाम लिए जा सकते हैं। 'केशरीगढ़ की काली रात', 'वैरागी वन के प्रेत', 'नीलगढ़ी का खजाना' आदि इनके किशोर उपन्यासों के नाम हैं।

राकेश कुमार सिंह को उनके साहित्यिक योगदान हेतु कई सम्मान प्राप्त हुए हैं, जिनमें 'झारखण्ड का प्रतिष्ठित राधाकृष्ण सम्मान', 'मध्यप्रदेश का अम्बिका प्रसाद दिव्य रजत अलंकरण' और 'कमलेश्वर स्मृतिकथा सम्मान' प्रमुख हैं। इनकी कहानियों का अनेक भाषा में अनुवाद भी हुआ है। साथ ही 'ठहरिए आगे जंगल है' कहानी पर टेलीफिल्म भी बनी है। इन्होंने 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश' उपन्यास पर आधारित फिल्म 'दस्ता' की पटकथा व संवाद लेखन का भी कार्य किया है।

राकेश कुमार सिंह ने अपने कथाओं में झारखण्ड के आदिवासियों के रहन- सहन, रीति-रिवाज, सभ्यता, खान-पान, वेश-भूषा, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, परंपरा, शोषण व संघर्षों आदि का व्यापक चित्रण किया है।

'हुल पहाड़िया' उपन्यास राकेश कुमार सिंह का नवीनतम उपन्यास है जो सन् 2012 में सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास झारखण्ड के आदिवासी जनजाति के आदि विद्रोही 'तिलका मांझी' की समरगाथा है। इसमें लेखक ने झारखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्य विस्तार एवं वहाँ के पहाड़िया आदि जनजातियों के ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा किये जा रहे अमानवीय शोषण एवं अत्याचारों का तथ्यपरक वर्णन किया है तथा उन अमानवीय अत्याचारों एवं शोषण से मुक्ति हेतु झारखण्ड के आदिवासियों के प्रारंभिक संघर्षों का भी व्यापक चित्रण किया है।

राकेश कुमार सिंह का यह एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। 'हुल पहाड़िया' का अर्थ पहाड़िया जनजाति का विद्रोह है अर्थात् इस उपन्यास में केवल तिलका मांझी के विद्रोह को ही नहीं बल्कि इसके साथ अन्य पहाड़िया लोगों की विद्रोह भावना को भी प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उन्होंने आदि विद्रोही तिलका मांझी के चरित्र चित्रण के साथ-साथ झारखण्ड के आदिवासियों के संघर्ष-यात्रा को भी तथ्यपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में केवल आदिवासी पुरुषों के संघर्षों को ही नहीं बल्कि स्त्रियों के संघर्षों को भी वाणी दी गयी है। तिलका मांझी की पत्नी रुपनी इसका प्रतिनिधित्व करती है।

राकेश कुमार सिंह ने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में वर्तमान युग के मगध विश्वविद्यालय बोधगया(बिहार) के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो. श्यामबिहारी सिंह, लन्दन विश्वविद्यालय की स्वर्णपदक विजेता छात्रा जेनिफर स्पीयर्स और पत्रकार राजेंद्र मुर्मू के बीच के आपसी वार्तालाप और विचार-विमर्शों के माध्यम से भारतीय इतिहास और उसमें तिलका मांझी और पहाड़िया जनजाति की भूमिका और संघर्ष को रेखांकित किया है। प्रो. सिंह भारतीय इतिहास पर चर्चा करते हुए भारत में अंग्रेजों के आगमन, पहाड़िया विद्रोह के उदय और तिलका मांझी के जीवन पर प्रकाश डालते हैं और इस प्रकार उपन्यास का कथानक विकसित होता जाता है। वे बताते हैं कि झारखंड के राजमहल पहाड़ों में बसे पहाड़िया जनजाति में मांझी चुनने की परंपरा विशिष्ट और कठिन होती है। जबरा उर्फ़ तिलका पहाड़िया को मांझी के पुत्र होने पर भी इन कठिन परीक्षाओं से गुजरना पड़ा। तीन कठिन परीक्षाओं से गुजरने और उसमें सफल होने के पश्चात ही तिलका पहाड़िया को पिता की असामयिक मृत्यु के बाद खाली मांझी का पद प्रदान किया गया। इसी घटना से 'हुल पहाड़िया' उपन्यास की शुरुआत होती है।

जब जंगलतराई में अकाल पड़ता है, तब तिलका अपने साथियों के साथ अंग्रेजों का माल लूट लेता है। कम्पनी का माल लूटे जाने के कारण अंग्रेज पहाड़िया लोगों पर आक्रमण करने की योजना बनाते हैं। अंग्रेज संथालों को पहाड़ों पर लाकर पहाड़िया लोगों से लड़ाने की योजना बनाते हैं। अंग्रेजों द्वारा आगस्टस क्लीवलैंड को राजमहल पहाड़ के कलेक्टर के पद पर नियुक्त किया

जाता है और वह अनेक प्रकार से पहाड़िया लोगों से छद्म मैत्री भाव स्थापित करने का प्रयास करता है, जिसके छद्म उदार व्यवहार से धोखा खाकर पहाड़िया लोग उस पर विश्वास करने लगते है और उसे 'चिलमिली साहब' के नाम से पुकारने लगते हैं। वह उन्हें कई सुझाव देता है और उनके पंचायत में श्रोता-दर्शक बन कर उपस्थित रहता है। उनके साथ शिकार करने के लिए भी जाता है। वह जबरा को ब्लैकमेल कर अपने साथ भागलपुर चलने के लिए मना लेता है और 'हिलरेंजर्स' की स्थापना करता है जिसका कमांडर जबरा को बनाया जाता है। इस प्रकार वह पूर्व कलेक्टर कैप्टेन ब्राउन का सपना पूरा कर देता है। संथाल और मुंडा से लड़ने के लिए 'हिलरेंजर्स' को भेजा जाता है इसी दौरान जबरा को 'तेलियागढ़ी वाला सपना' (स्वतंत्र पहाड़िया राज्य का सपना) आता है। वह हकीकत से जाग जाता है और पहाड़िया जवानों को एकत्रित कर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह शुरू कर देता है। अंग्रेज पहाड़िया लोगों को उनके ही पहाड़ों पर घेर कर कैद कर देते हैं जिसके कारण वे लोग भूखों मरने लगते हैं। तब तिलका अपने साथियों के साथ विद्रोह को दोबारा प्रारंभ करता है।

"यह संघर्ष उस जीवन के लिए था, जिसकी नियति है मरण। एक ओर थे शोषित, वंचित, काले, अनपढ़, भूखे, पहाड़ों के चिर निवासी पहाड़िया। दूसरी और थी हड़प नीति की आराधक, विश्व की सर्वाधिक सभ्य-सुशिक्षित होने का दावा करने वाली अंग्रेज जाति, जो पृथ्वी के जंगलतराई जैसे भू-क्षेत्रों को सभ्य और सुशिक्षित बनाने के पवित्र उद्देश्यों का नकाब धारे अविकसित क्षेत्रों में सेंध लगाती थी और फिर अपने साम्राज्यवादी पंजे गाड़कर उन क्षेत्रों पर

सदियों की दासता लाद कर वहां के आदि निवासियों का रक्त चुस्ती रहती थी।" (हुल पहाड़िया, पृष्ठ सं- 315)

'जीवन का अंतिम बेझा-तुन खेलते' (पहाड़िया आदिवासी समाज में तीन दिनों तक चलने वाला शिकार का पर्व) पहाड़िया लोग मर रहे थे। अंत में तिलका पकड़ा गया और उसे फांसी दे दी जाती है परन्तु तिलका के मरने से इस विद्रोह का अंत नहीं होता है। बड़की के पुत्र को भी वही 'तेलियागढ़ी वाला सपना' (स्वतंत्र पहाड़िया राज्य का सपना) आता है जो तिलका मांझी को आता था और इसी से बड़की के मन में भी विद्रोह का भाव उत्पन्न होता है और यहीं उपन्यास का अंत होता है।

भारतीय आदिवासी विद्रोही नायकों की परंपरा में तिलका मांझी, सिदो-कान्हू, चांद-भैरव, मुरमू भाइयों, बिरसा-मुंडा, टाना भगत आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं, परन्तु उनके स्वतंत्रता संघर्ष को प्रारंभ में इतिहासकारों विशेष कर साम्राज्यवादी अंग्रेजी इतिहासकारों की उपेक्षा का शिकार होना पड़ा, उन्हीं के नक़्शे कदम पर चलते हुए कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी इनकी अनदेखी की। जिन भारतीय आदिवासी विद्रोही नायकों की उपेक्षा की गयी, उन में से एक महत्वपूर्ण नाम तिलका मांझी का है।क्रांति के इस प्रथम अग्रदूत ने राजमहल की पहाड़ियों में ईस्ट इंडिया कम्पनी की साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध नगाड़ा बजाकर विद्रोही की शुरुआत की थी। परन्तु क्रांति के इस महानायक को इतिहास में वह स्थान नहीं दिया गया जिसके वे हकदार थे।

विवादों से घिरे रहे इस विद्रोही नायक को अपने होने के प्रमाण बार-बार प्रस्तुत करने पड़े।

कथाकार राकेश कुमार सिंह ने बड़ी लगन के साथ इस महानायक की मुक्तिकामी चेतना के साथ उस समय के पहाड़िया समाज के दुःख-दैन्य, मरणांतक संघर्ष और इस जनजाति की अपने काल में सार्थक हस्तक्षेप गाथा को शब्दबद्ध किया है। उपन्यासकार ने गहन प्रमाणिक शोध के साथ क्रांति के इस प्रथम अग्रदूत की कथा को इतिहास(तथ्य) एवं कल्पना के मेल से गढ़ा है और उसे भाषा एवं शिल्प की चासनी में लपेट कर इस तरह प्रस्तुत किया है कि तिलका मांझी जन-जन में व्यापसकें और इतिहास की तत्संबंधी कमी पूरी हो सके। द्वितीय उप अध्याय 'संवेदना और शिल्प की अवधारणा' है।इसके अंतर्गत संवेदना का अर्थ और परिभाषा बताते हुए उसके स्वरुप पर प्रकाश डाला गया हैं। संवेदना और साहित्य का गहरा सम्बन्ध होता हैं। संवेदना कथा-लेखन का आतंरिक रूप होता हैं। रचनाकार अपने जिवानुभूति को रचना में, कल्पना के साथ अभिव्यक्त करता हैं और उसे साकार रूप प्रदान करता है। उसकी यहीं अनुभूति रचनकार की संवेदना बन जाती हैं। फिशर के अनुसार अंतर्वस्तु केवल 'क्या प्रस्तुत किया जाए' में ख़त्म नहीं होता बल्कि किस सामजिक और लेखक के व्यक्तिगत चेतना के साथ प्रस्तुत किया गया हैं। युग परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक परिस्थियों में भी बदलाव होता हैं जिसके कारण लेखक के संवेदना में भी परस्पर बदलाव आ जाता हैं। रचना-प्रक्रिया में 'शिल्प' की महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। रचनाकार अपने अनुभवों और अनुभूति को

पाठकों के हृदय में मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने की कला हैं। 'शिल्प' कथा-लेखन की बाह्य रूप हैं। जिस प्रकार आभूषण के बीना स्त्री फीका पड़ जाती हैं उसी प्रकार शिल्प के बिना कथा-लेखन अमूल्य बन जाता हैं। निष्कर्षत: इस अध्याय में रचनकार के व्यक्तित्व एवं उनके कृतित्व को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया हैं और उपन्यास की संवेदना और शिल्प की अवधारणा पर सैद्धांतिक दृष्टि से संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की संस्कृति और मूल्यगत संवेदना' है। इस अध्याय के तहत दो उप अध्याय हैं। प्रथम उप अध्याय है 'पहाड़िया जनजाति की संस्कृति' और द्वितीय उप अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की मूल्यगत संवेदना' है। प्रथम उप अध्याय के अंतर्गत संस्कृति का अर्थ और परिभाषा देते हुए 'हुल पहाड़िया' उपन्यास के माध्यम से पहाड़िया जनजाति की संस्कृति, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार आदि से जुड़े अनेक विषयों के वैशिष्टय का उद्घाटन किया गया है। पहाड़िया जनजाति में गाँव का मांझी चुनने की एक महत्वपूर्ण परंपरा है। पहाड़िया जनजाति के इस परंपरा के अनुसार मांझी का पद ग्रहण करने के लिए उम्मीदवारों को गाँव के पंचायत द्वारा निर्धारित किए गए चुनौतियों को पूरा करके अपनी योग्यता साबित करनी पड़ती थी, चाहे वह मांझी का ही पुत्र क्यों न हो। इन चुनौतियों के द्वारा पंचायत को उम्मीदवारों के बल, बुद्धि और शक्ति के साथ-साथ कुछ अन्य गुणों जैसे निष्पक्ष दृष्टि का होना, संगठनात्मक क्षमता का होना, नेतृत्व निपुणता और चातुर्य आदि योग्यताओं एवं गुणों को देखने और परखने का

मौका मिलता था। उनमें सफल होने के बाद ही उसे मांझी का पद दिया जाता था। पहाड़िया जनजातीय मेंअपने ही जनजातीय समाज के अंतर्गत विवाह सम्बन्ध स्थापित करने की परंपरा थी परन्तु एक ही गोत्र में विवाह संबंधों को निषिद्ध किया गया है। इसके साथ ही किसी व्यक्ति की सामजिक स्थिति के उच्च या निम्न होने का विवाह संबंधों पर कोई फर्क नहीं पड़ता है।

पर्व-त्यौहार भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इसके बिना समाज खुशहाल नहीं हो सकता है। पर्व-त्यौहार हमारे जीवन को एक नई आशा, आनंद, उमंग व उत्साह की भावना से भर देते हैं। झारखण्ड के आदिवासी समाज भी अनेक प्रकार के पर्व-त्यौहार मनाते हैं, कुछ पर्व तो इसे है जिन्हें केवल एक जनजाति ही नहीं बल्कि आस पास के सभी गांवों की जनजातियां एक साथ मिलकर मनाती हैं। लेखक ने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में पहाड़िया जनजाति के एक विशेष पर्व- 'बेझा-तुन पर्व', जिसका अर्थ है तीन दिन का शिकारी-पर्व, का महत्वपूर्ण ढंग से उल्लेख किया है। इस पर्व के विवरण से यह ज्ञात होता है पहाड़िया जनजातीय समाज और शिकार में गहरा सम्बन्ध रहा है। पहाड़िया जनजाति समाज में किशोर और किशोरियों का पृथक पृथक युवा गृह होता था जिसमें वे शादी से पूर्व रहते थे और रात बिताते थे। जहाँ उन्हें भावी जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान और रीति रिवाजों का प्रशिक्षण दिया जाता था।

द्वितीय उप अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की मूल्यगत संवेदना' के अंतर्गत मूल्य को परिभाषित करते हुए पहाड़िया जनजाति की प्रेम, त्याग,

बलिदान, पारिवारिक सम्बन्ध एवं स्त्रियों के प्रति उनकी उद्दत दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है। सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक जीवन के साथ मूल्य का गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार गाँव के लोगों के लिए गाँव के मुखिया और पंचायत की बात का पालन करना एक सामजिक मूल्य है उसी प्रकार गाँव की सुरक्षा और गाँववालों की जान-माल की रक्षा का दायित्व मुखिया के ऊपर निर्भर करता है, जिसका पालन करना उसका नैतिक एवं राजनीतिक दायित्व और मूल्य है। संकट के समय मुखिया अपने गाँव को बचाने के लिए अनैतिक कार्य भी कर सकता था, जिस प्रकार दुर्भिक्ष अकाल के समय में अपने गाँव को भूख के कारण मरने से बचाने के लिए तिलका मांझी कंपनी के हरकारों एवं डाकियों पर बार-बार आक्रमण करता है और उनसे कम्पनी का रुपया और रसद का सामान लूट लेता है पर इन सामानों को वह अपने पास नहीं रखता है बल्कि भूख से मर रहे अपनी गाँववालों की मदद के लिए उन पैसों से खाने का अन्न खरीदता है और उन्हें गाँववालों में बाँट देता है। इस प्रकार एक प्रकार का अनैतिक कार्य करके भी वह अपनी मुखिया के कर्तव्यों का पालन करता है और इस प्रकार अपने गांववालों की रक्षा करके एक आदर्श की स्थापना करता है। पहाड़िया जनजाति में एक दूसरे की बात का मान रखना एक महत्वपूर्ण बात मानी जाती है। दो गाँवों के बीच कैसी भी समस्या हो, असहमतियाँ हों, चाहे व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो या सामाजिक हो, उन समस्यों को सहमतिपूर्वक सुलझाने के लिए पंचायत बुलाई जाति थी। जब एक गाँव का मांझी पंचायत के लिए गिरह भेजता था तो उस गाँव के मांझी की गिरह का मान दूसरे गाँव के मांझी को रखना पड़ता था। जिस प्रकार 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में सोनारी

गाँव के मांझी ने सिंगारसी गाँव के मांझी को गिरह भेजा था तो उसका मान रखा गया। किन्तु सिंगारसी गाँव का मांझी अस्वस्थ होने के कारण स्वयं नहीं जा पाया तो उसने अपने बदले अपने पुत्र तिलका मांझी को भेजा। इस न्योता का मान रखने के साथ-साथ दोनों गांवों के संबंधों को भी बचाए और बनाए रखा गया। दोनों गांवों के बीच वैमनस्य को मिटाने के लिए तिलका मांझी ने फागुन और गेंदी की शादी करवा दी जिससे दोनों गाँवों की इज्ज़त बच गयी और मान भी बना रहा। पहाड़िया समाज में केवल एक ही गाँव में नहीं बल्कि अनेक गाँवों के बीच भी एकता बनी रहती थी। उनके बीच जल, जंगल और जमीन को लेकर कभी वाद-विवाद नहीं होता था जब कभी कोई संकट आता था तो वे उसका सामना मिल जुलकर करते थे। उनकी एकता की मिशाल 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में तब दिखाई पड़ती है जब वे एक साथ मिलकर अंग्रेजों का मुकाबला करते हैं। पहाड़िया जनजाति सीधी, सरल और सहज थी जिसका फ़ायदा व्यापारिक बुद्धि से संपन्न अंग्रेज उठा रहे थे परन्तु अंत में अपनी भूमि, पहाड़, जल, जंगल और जमीन के लिए पहाड़िया एकजुट होकर कम्पनी के प्रति विद्रोह करते है भले ही कम्पनी के विरुद्ध इस लड़ाई में वे अपनी जान गवाँ बैठते है इससे पहाड़िया जनजाति की अपनी भूमि, पहाड़, जल, जंगल और जमीन के प्रति उनके असीम प्रेम एवं ममत्व की झलक मिलती है। इस तरह इस अध्याय के अंतर्गत पहाड़िया जनजाति की परम्पराएँ, संस्कृति, रीति-रिवाजों, विश्वासों और मान्यताओं के वैशिष्टय का उद्घाटन किया गया है।

तृतीय अध्याय 'ईस्ट इंडिया कम्पनी की विस्तार-नीति और तिलका-मांझी का संघर्ष' है। इस अध्याय को दो उप अध्यायों में बांटा गया है। प्रथम उप अध्याय 'ईस्ट इंडिया कम्पनी का हस्तक्षेप और उसकी विस्तार-नीति' है और द्वितीय उप अध्याय 'तिलका मांझी का जीवन संघर्ष' है। प्रथम उप अध्याय के अंतर्गत भारत में अंग्रेजों के आगमन पर प्रकाश डाला गया है। प्रारंभ में 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' का गठन भारत के साथ-साथ एशिया महाद्वीप के देशों के साथ व्यापार करने के लिए किया गया था। इंग्लैंड की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी को 31 दिसम्बर 1600 ई. में रॉयल चार्टर प्रदान किया गया जिसके तहत ईस्ट इंडिया कम्पनी को हिन्द महासागर के पूर्वी हिस्से पर वाणिज्य का एकाधिकार दिया गया। इस प्रकार इस नई कम्पनी को इंग्लैंड और एशिया के बीच व्यापार करने का और इसके लिए आवश्यक शक्ति (सेना) के इस्तमाल करने का एकाधिकार प्रदान किया गया। इन अधिकारों से लैस होने के बाद कम्पनी ने व्यापारिक कदम उठाये और अपने हितों की रक्षा के लिए सम्पूर्ण विश्व में सैनिक हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। प्रारंभ में कम्पनी का भारत में आगमन केवल व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में रूचि रखने के कारण हुआ था। परन्तु मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के उपरान्त उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता एवं अदुर्दर्शिता ने कम्पनी को भारत में अपने व्यापारिक एवं राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति को अग्रसारित किया। भारत की कमजोर राजनीतिक स्थिति का फ़ायदा उठाते हुए कम्पनी ने 1757ई. में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप किया और छल, बल, कल का इस्तमाल करते हुए बंगाल के नवाब को बिना खून बहाए पराजित कर दिया।

'पलासी के युद्ध' (1757) में विजयी प्राप्ति के बाद कम्पनी को राजनीतिक और आर्थिक स्तरों पर बहुत अधिक लाभ हुआ। 1764 ई.में सार्वभौम सत्ता के लिए कम्पनी और *मीर कासिम* (बंगाल के नवाब), अवध के नवाब और मुग़ल बादशाह की संयुक्त सेना के बीच बक्सर का युद्ध हुआ था, इसमें भी कम्पनी की जीत हुई और भारत के दो सौ सालों की गुलामी की शुरुआत हुई। इस युद्ध के बाद कम्पनी के हाथ भारत की राज-सत्ता की चाभी लग गयी और उसके हाथ संयुक्त बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी भी आ गयी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा के आदिवासियों पर अंग्रेजों का दमन और शोषण इस दीवानी की प्राप्ति के बाद हीप्रारंभ हुए।

सामान्यत: आदिवासियों को अशिक्षित, भोला तथा पिछड़ा माना जाता है। सीधे, सादे, सरल जंगलतराई के आदिवासियों की स्वतंत्रता को येनकेन प्रकारेण बाधित कर कम्पनी उन्हें गुलाम बनाने की हर चाल चल रही थी। उनका शारीरिक और मानसिक रूप से शोषण कर रही थी। कम्पनी आदिवासियों के प्राकृतिक अधिकारों पर रोक लगाते हुए उनके भूमि पर कब्ज़ा कर उनसे ही निर्यात के लिए खेती करवाने लगी थी। सरल और भोले आदिवासी अपने ही ज़मीनों पर श्रमिक बनने लगे थे। कम्पनी ज़मींदारों, राजाओं से कर वसूलने लगी थी और साथ ही साथ आदिवासी जनजातियों पर भी कर का बोझ लाद रही थी। आदिवासियों से कर वसूल कर कम्पनी पैसा कमा रही थी और उन्हें सभी प्रकार से लूट रही थी। लेकिन पहाड़िया जनजाति इस कर व्यवस्था और लूट का विरोध करती है क्योंकि जिस जमीन से कम्पनी

कर वसूलना चाहती थी। वह जमीन कभी भी कम्पनी की नहीं थी। उस जमीन पर पहाड़िया आदिवासियों का नैसर्गिक अधिकार था। यहाँ तक की मुग़ल शासन काल में भी उन्होंने कभी किसी शासक को कर नहीं चुकाया था। लेकिन कम्पनी उन्हें कर चुकाने के लिए बाध्य कर रही थी।

कंपनी पहाड़िया आदिवासियों से छल-कपट और पैसे का लालच देकर उनके अनाजों को कम दाम में खरीदकर जमा कर लेती है और अकाल के समय उन्हीं अनाजों का दाम बहुत ज्यादा बढ़ा देती है, परिणामस्वरूप पहाड़िया जनजाति को भूखे मरने की नौबत आ जाती है। अंग्रेजों को इस बात का अनुमान था कि पहाड़िया जनजातीय के पास अनाज खरीदने के लिए पर्याप्त पैसे नहीं हैं, जिससे वे विवश हो जायेंगे और उनकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। फिर वे उनपर और ज्यादा मनमाना अत्याचार कर सकेंगे और उनका विविध प्रकार से शोषण कर सकेंगे। इस प्रकार अंग्रेजों ने पहाड़िया जनजाति से उनकी भूमि, गाँव, जल, जंगल, जमीन और प्राकृतिक संसाधनों को हड़पने का पूरा षड्यंत्र किया। जिसका स्पष्ट उल्लेख राकेश जी अपने इस उपन्यास में करते हैं।

द्वितीय उप अध्याय के अंतर्गत आदिवासी समाज के आदि विद्रोही तिलका मांझी के निजी जीवन और राजनीतिक जीवन के विभिन्न छोटे-बड़े उतार चढ़ाव को रेखांकित किया गया है। किशोरावस्था के समय से ही तिलका के संघर्ष की शुरुआत होती हैं। मांझी का पद ग्रहण करने के लिए उसे अपनी योग्यता सिद्ध करनी पड़ती है। अपनी भूमि, जल, जंगल, जमीन, प्राकृतिक

संसाधनों और अपने गाँव को बचाने के लिए वह अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करता है। वह सारे पहाड़िया जनजाति को एकजुट कर अंग्रेजों का मुकाबला करता है और अंत में कलेक्टर अगस्टस क्लीवलैंड को विष भरी तीर से मार गिराता है। इस अध्याय में भारतीय राजनीति में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रवेश और उसकी साम्राज्यवादी विस्तार नीति का पर्दाफाश करते हुए झारखण्ड के आदिवासी क्षेत्रों में उसकी शोषण-नीति का उद्‌घाटन किया गया है और झारखण्ड क्षेत्र के पहाड़िया जनजातियों पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के विविध रूपा दमनकारी नीतियों को भी विस्तार से रेखांकित किया गया है। इस प्रकार इस अध्याय में पहाड़िया जनजाति के आदि विद्रोही तिलका मांझी के जीवन-चरित्र और उनके विविध रूपा संघर्षों पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय 'हुल पहाड़िया का शिल्प' है, इसके अंतर्गत दो उप अध्याय हैं -1. भाषा 2. शैली । प्रथम उप अध्याय 'भाषा' के अंतर्गत उपन्यास में प्रयुक्त भाषा, मुहावरों एवं लोकोक्तिओं आदि के वैशिष्ट्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास की भाषा सहज, सरल और प्रवाहपूर्ण है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल किया है। द्‌वितीय उप अध्याय 'शैली' के अंतर्गत उपन्यास में प्रयुक्त विभिन्न शैलियों का विश्लेषण किया गया है और ऐतिहासिक उपन्यास की दृष्टि से इसकी शैली का विश्लेषण किया गया है। राकेश जी ने अपने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में वर्णनात्मक, संवादात्मक, चित्रात्मक, पूर्वदीप्ति, काव्यात्मक आदि विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है।

उपन्यास को रोचक बनाने के लिए राकेश जी ने किस्सागोई शैली का इस्तेमाल करते हैं। ट्रेन में यात्रा करते हुए तीन यात्री मिलते हैं- मगध विश्वविद्यालय, बोधगया(बिहार) के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो. श्यामबिहारी सिंह, लन्दन विश्वविद्यालय की स्वर्णपदक विजेता शोध छात्रा जेनिफर स्पीयर्स और आदिवासी समाज और संस्कृति के मर्मज्ञ और पेशे से पत्रकार राजेंद्र मुर्मू। सहयात्रियों की जिज्ञासा को शांत करने के लिए मगध विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो. श्यामबिहारी सिंह किस्सागोई शैली (स्वयं लेखक ने इस उपन्यास की शैली के लिए किस्सागोई शैली का प्रयोग अपने साक्षात्कार में किया है) में आदि विद्रोही तिलका मांझी की कथा सुनाते हैं और उसके जीवन मरणांतक संघर्ष एवं उद्दत चरित्र पर प्रकाश डालते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'हुल पहाड़िया' एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें इतिहास प्रसिद्ध आदि विद्रोही तिलका मांझी के जीवन संघर्ष एवं ऐतिहासिक महत्त्व का रेखांकन राकेश कुमार सिंह ने किया है। आदि विद्रोही तिलका मांझी के विद्रोह एवं संघर्ष की साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने घोर उपेक्षा की है। राकेश जी अपनी गहन शोध वृत्ति, लेखकीय संवेदना और काव्य की रूप विधायिनी शक्ति कल्पना के मणिकांचन संयोग से उस कमी को पूरा करते हैं और तिलका मांझी के उद्दत चरित्र को अपनी प्रभावशाली लेखनी के माध्यम से हिंदी समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं। हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परंपरा में यह उनका एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। जितने धैर्य, ईमानदारी, लगन, मेहनत, निष्पक्षता, तथ्यपरकता

से उन्होंने ऐतिहासिक साक्ष्यों का संग्रह, अवलोकन, विश्लेषण और मूल्यांकन कर उसे उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है वह काबिले तारीफ़ है। हिंदी ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा में 'हुल पहाड़िया' एक मील का पत्थर साबित होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

*****

परिशिष्ट - I

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ :

राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

सहायक ग्रंथ :

हिंदी :

अज्ञेय, हिंदी साहित्य - एक आधुनिक परिदृश्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1967

गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

चंद्रकांत बांदिवडेकर, उपन्यास स्थिति और गति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

डॉ. जवाहर सिंह, हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986

डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, हिंदी कहानी में शिल्प विधि का विकास,

डॉ. सुरेश सिन्हा, हिंदी उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1972

डॉ. सुरेश बाबर, भीष्म सहनी के साहित्य का अनुशीलन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1997

नामवर सिंह, आधुनिक हिंदी उपन्यास भाग(1-2), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

निर्मल कुमार बोस, भारतीय आदिवासी जीवन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दिल्ली, 2013

प्रो. सतीश चन्द्र मित्तल, ब्रिटिश इतिहास तथा भारत, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2010

भारतीय इतिहास के कुछ विषय - भाग 3, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 2013

रणेंद्र (सं), सुधीर पाल (सं), झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया- खंड 1, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,2008

राकेश कुमार सिंह, जहाँ खिले हैं रक्त पलाश, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003

राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003

राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं हैं, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005

राकेश कुमार सिंह, साधो यह मुर्दों का गाँव, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008

राजेन्द्र प्रसाद सिंह, तिलका मांझी, नयी किताब, दिल्ली, 2011

रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2015

रामचंद्र तिवारी, हिंदी उपन्यास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010

रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

लक्ष्मी सुब्रमणयण, भारत का इतिहास 1707 से 1857 तक, ओरियंट ब्लैक्स्वान, नई दिल्ली, 2013

वीर भारत तलवार, झारखंड के आदिवासियों के बीच, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

वीरेंद्र कुमार, आदिवासी विमर्श और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013

शेखर बंद्योपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरियंट ब्लैक्स्वान, नई दिल्ली, 2015

English :

A.R.Desai, Social Background of Indian Nationalism, Popular Prakashan, Mumbai, 2010

Sakhawliana, Public Administration for class XI & XII, 2010

कोश :

कलिका प्रसाद, राजवल्लभ सही, मुकुन्दी लाल स्ग्रिवास्तव(संपादक), बृहत् हिंदी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2014

डॉ. अमरनाथ(संपादक), हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013

डॉ. रामचंद्र वर्मा, बृहत् प्रमाणिक हिंदी कोश, लोक भारती प्रकाशन, 2006

धीरेन्द्र वर्मा(संपादक), हिंदी साहित्य कोश (भाग- 1, 2), ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 2000

बदरीनाथ कपूर(संपादक), वैज्ञानिक परिभाषा कोश, शब्दलोक प्रकाशन, बनारस, 1965

मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव(संपादक), ज्ञानशब्द कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी,1986

रामचंद्र वर्मा(संपादक), मानक हिंदी कोश, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग,1978

वामन शिवराज आप्टे(संपादक), संस्कृत-हिंदी कोश, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली,1989

पत्रिका :

अनंत कुमार सिंह(संपादक), जनपथ, आरा, मई, 2013

अनंत कुमार सिंह, दैनिक हिन्दुस्तान, 11 सितम्बर, 2003

कथाबिम्ब पत्रिका, अप्रैल-जून, 2002

जनसत्ता, दिल्ली, 28 अप्रैल, 2013

दैनिक जागरण, रांची, 31 अगस्त, 2012

डॉ. शशिकला राय, कथाक्रम, अप्रैल-जून, 2004

मनोज कुलकर्णी, कथादेश, अक्टूबर, 2008

रजनीगुप्त, इंडिया टुडे, अंक 20 अक्टूबर,2003

श्यामसुंदर दूबे, अक्षरा, जनवरी - फरवरी, 2006

सुरेन्द्र दूबे, समीक्षा, जुलाई- सितम्बर, 2004

वेबसाइट :

https://samalochan.blogspot.com/2014/11/blog-post_7.html?m=1

https://bharatdiscovery.org/india/तिलका_मांझी

hesnathpandey.blogspot.in/2015/05/blog-post.html?m=1

https://hindianswersonline.blogspot.com/2017/10

परिशिष्ट - ||

'हुल पहाड़िया' उपन्यास के लेखक राकेश कुमार सिंह का साक्षात्कार

राकेश कुमार सिंह समकालीन हिंदी कथा के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनके उपन्यास 'हुल पहड़िया' पर लघु शोध प्रबंध लेखन की मिज़ोरम विश्वविद्यालय की ओर से औपचारिक अनुमति मिलने के साथ ही मैंने अपने शोध निर्देशक की सलाह पर उनके साक्षात्कार की योजना बनाई। ताकि उनकी रचनाओं को मैं ज्यादा अच्छी तरह समझ पाऊँ। अपने शोध निर्देशक की सलाह और मार्गदर्शन में मैंने इस साक्षात्कार हेतु प्रश्न सूची को तैयार किया। राकेश कुमार सिंह बिहार के आरा शहर में रहते हैं जो मिज़ोरम से काफी दूर है और मेरा वहाँ सहजता से जा पाना संभव नहीं था। इसलिए मैंने इस प्रश्न सूची को अपने शोध निर्देशक के हाथों राकेश जी को जवाब देने के अनुरोध के साथ एक पत्र के माध्यम से प्रेषित किया। मेरे शोध निर्देशक प्रो. संजय कुमार दिनांक : 25 जुलाई 2017 को आरा में राकेश कुमार सिंह से व्यक्तिगत रूप से मिले और मेरा पत्र उन्हें सौंप कर मेरे प्रश्नों का उत्तर देने का अनुरोध किया। उदार व्यक्तित्व के धनी राकेश कुमार सिंह ने हमलोगों के इस अनुरोध को सहर्ष स्वीकार कर लिया और मोबाइल के माध्यम से जवाब देने का पक्का वादा किया। दो दिन के बाद ही दिनांक : 27 जुलाई 2017 से लेकर 30 जुलाई 2017 तक उन्होंने मेरे शोध निर्देशक के मोबाइल नंबर पर व्हाट्सऐप्प के माध्यम से क्रमबद्ध रूप से मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर दिया। प्रस्तुत साक्षात्कार उसी का परिणाम है। इसके लिए मैं 'हुल पहड़िया' उपन्यास के लेखक राकेश कुमार सिंह के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ और उनकी भविष्य में आने वाली रचनाओं के लिए मंगल कामनाएँ करती हूँ।

1. राकेश कुमार सिंह जी, आपके ज्यादातर उपन्यास झारखण्ड के आदिवासी जीवन एवं संस्कृति पर आधारित हैं। ऐसा क्यों?

राकेश कुमार सिंह: क्योंकि यह मेरे पड़ोस का मामला हैं। रचनाकार की कलम उसकी अपनी जमीन से ही खाद पानी ग्रहण करती है। वही से उसकी रचनात्मकता को शक्ति और नई उड़ान की उर्जा मिलती है। सिर्फ आदिवासी ही नहीं वस्तुत: मेरी रचनात्मकता की गर्भनाल पालमू के वर्षा वंचित पठार पर बसे हलवाहों (झारखण्ड), चरवाहों, गडेरियों, सपेरों, मदारियों नटुओं, बहुरूपियों आदि से जुड़ी हुई हैं। इनके दुख दैन्य, संघर्ष और अमर्ष ही मेरी रचना शीलता के उद्दीपन हैं। इस नाते मैं इन सब का करजई हूँ। मैं किसी होड़ में शामिल होकर दिल्ली, पटना, भोपाल, जैसा नहीं लिख सकता लिहाजा अपनी प्राथमिकताओ के सड़के मेरी कहानियां झारखण्ड के जीवन और समाज पर आधारित हैं और इनमे आदि वासी समाज की उपस्थिति अस्वाभाविक नहीं हैं.

2. "हुल पहाड़िया" या आदि विद्रोही तिलका मांझी के जीवन पर उपन्यास लेखन की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली?

राकेश कुमार सिंह: 'हुल पहाड़िया' उपन्यास तिलका मांझी से सम्बंधित नवीनतम शोध और साक्ष्यो की रौशनी में परिप्रेक्ष्य को सही करने की कोशिश है। इतिहासकरों ने तो तिलका मांझी को लगभग उपेक्षित रखा। महाश्वेता देवी की जिस कलम ने बिरसा मुंडा पर "जंगल के दावेदार" जैसा महत्त्वपूर्ण काम किया वह कलाम "शालगिरह की पुकार" में तिलका के साथ न्याय नहीं कर सकी। पहले तो तिलका मांझी को संताल स्थापित कर डाला। पहाड़िया आंदोलन में महेशपुर की रानी सर्वेश्वरी के योगदान का कोई संज्ञान नहीं लिया गया जबकि तिलका की पक्षधरता के कारण अंग्रेजों ने महेशपुर राज को तबाह कर दिया था।

महाश्वेता देवी और उनके साहित्य के प्रति पुरे सम्मान के साथ मैं यह आपत्ति दर्ज करना चाहता हूँ कि आदिवासी नायकों को उचित सम्मान मिलना ही चाहिए पर गैर आदिवासी जन के योगदान को दृष्टि ओझल करने जैसी मेरा

मतलब हैं एतिहासिकता के प्रति असावधानी उचित नहीं। मेने बस पहाड़िया आन्दोलन की कुछ छुटी हुई कड़ीयों को सामने रखने की कोशिश की है।

3. क्या इसे 'ऐतिहासिक उपन्यास' कहा जा सकता है?

राकेश कुमार सिंह: क्या बात करती है आप जुदिथ। मैं विज्ञान का आदमी हूँ भाई! इतिहासकारों के सामने खड़े होने की कूबत मुझमे कहाँ? मैंने तो बस हाशिए के पक्ष में खड़े होकर यह सवाल उठाने की कोशिश की है कि आजादी की लड़ाई का इतिहास दर्ज करते हुए आदिवासी समाज के पलडे में डंडी क्यों मारी गई। मैं इतिहास का पुनर्लेखन करने की योग्यता नहीं रखता। उपन्यास लिखा है जिसमें चावल दाल की खिचड़ी की भांति रचित साहित्य के साथ इतिहास मिला दिया है। अब पाठक इसे ऐतिहासिक उपन्यास कह लें या औपनिवेशिक देशकाल की पृष्ठभूमि में उपन्यास। हर पाठक अपना पाठ तय करने को स्वतंत्र है।

4. तिलका मांझी के जीवन पर ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में आपको किन किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा? इस उपन्यास हेतु ऐतिहासिक सामग्री का संकलन आपने कहाँ से किया?

राकेश कुमार सिंह: सबसे बड़ी चुनौती तो यही थी कि सच पर छाई धुंध के पार जाकर जो भी तथ्यात्मक सच है उन्हें सामने लाना। इस काम के लिए भागलपुर के बुद्धिजीवी पत्रकार राजेन्द्र सिंह जी ने मेरी हरसंभव सहायता की है। दुमका में प्रेस ट्रस्ट ऑफ़ इंडिया के खोजी पत्रकार अनूप कुमार वाजपेयी जी की कई रातों की नींद मैंने हराम की हैं। कवियत्री निर्मला पुतुल और अशोक सिंह के योगदान से इंकार करना अहसान फरामोशी होगी। अपने अग्रज रचनाकारों के काम से भी सहायता मिली है। इस तरह के उपन्यास एक अकेले का काम नहीं होता।

5. उपन्यास में वर्णित तिलका मांझी के जीवन और संघर्ष को कहाँ तक ऐतिहासिक और कहाँ तक काल्पनिक माना जाए?

राकेश कुमार सिंह: उपन्यास में तिलका मांझी का संघर्ष एक ऐतिहासिक परिघटना हैं जिसके साथ मैंने कोई छेड़छाड़ नहीं की है। कोई औपन्यासिक छुट नहीं ली है। हाँ, तिलका का पारिवारिक जीवन और उसके आत्मसंघर्ष के लिए मैंने खाली जगहों को अपनी कल्पना से भरा है। कोशिश की है कि वह तत्कालीन समय और समाज के साथ दूध पानी की भाति घुल मिल जाए. मेरी कोशिश कहाँ तक कामयाब रही यह निर्णय तो अब आप सबको करना है।

6. आदि विद्रोही यिल्का मांझी के विद्रोह को इतिहास में उपेक्षित रखने की आपके नजर में क्या क्या वजह हो सकती हैं?

राकेश कुमार सिंह: मेरी समझ से इसे यूं भी समझा जा सकता है कि भारत में अंग्रेजी सत्ता कायम हो चुकी तो गुलाम भारत के इतिहास को स्वामी इंग्लैंड के इतिहास का एक परिशिष्ट मात्र बना दिया गया और गुलामों के इतिहास को उसके अतीत को गोरवान्वित नहीं किया जाता। भारत के प्रथम "प्रथम स्वतंत्रता संग्राम" को भी अंग्रेजी इतिहासकारों ने "सिपाही विद्रोह" कह कर उसके परिप्रेक्ष्य को सीमित करने कि कोशिश की थी ताकि एक क्रान्ति को विद्रोह कि यूरोपीय परिभाषा में कैद किया जा सके। भारतीय इतिहासकारों ने भी अंग्रेजी इतिहास को सच मान कर उसी का अंधानुकरण किया। न अपनी देसी इतिहास दृष्टि निर्मित की, न ही भारत के औपनिवेशिक इतिहास को ही दर्ज करने के प्रयास किये गए। लिहाजा "संताल क्रान्ति", "पहाड़िया क्रान्ति", "उलगुलाने क्रांति" या "बिरसा मुंडा की और भी कई हैं जिन्हें मात्र विद्रोह के खाते में डाल कर पल्ला झाड़ लिया गया।

भारतीय इतिहासकार भी पूर्व लिखित अंग्रेजी इतिहास का नक़ल करते हुए जनजातीय क्रांतियों की उपेक्षा करते रहे पर अब परिदृश्य बदल रहा हैं। सिपाही विद्रोह की परिभाषा बदल चुकी है। आज नहीं तो कुछ समय बाद जनजातियों के संघर्षो को भी इतिहास में भी वह मान्यता और सम्मान मिल कर रहेगा जिसका बीडा साहित्य ने उठा लिया है।

7. 'हुल पहाड़िया' उपन्यास की शैली की क्या विशेषताए हैं? प्रोफेसर सिंह, शोधार्थी एवं पत्रकार के आपसी वर्तालाप से उपन्यास का कथानक विस्तार पाता हैं। क्या सम्पूर्ण उपन्यास में इस शैली का प्रयोग किया गता है या केवल बीच से?

राकेश कुमार सिंह: शोधकर्ता आप है और शोध के निष्कर्ष मुझसे पूँछ रहीं हैं। मैं तो खुद उत्सुक हूँ कि आपके शोध से क्या निकल कल आने वाला है। हाँ, आपके प्रश्न के तीसरे वाक्य का उत्तर यह है कि पूरे उपन्यास में एक ही शैली के उपयोग की कोशिश की गई है।

8. क्या इस शैली को पूर्व दीप्ती शैली (फ्लैश बैक शैली) कहा जा सकता हैं?

राकेश कुमार सिंह: "फ्लैश बैक या पूर्व दीप्ति की शैली" का शायद बेहतर इस्तमाल मैंने अपने ताजा उपन्यास "महाअरण्य में गिद्ध" में किया है। "हुल पहाड़िया" उपन्यास के लिए किस्सागोई शैली का उपयोग करे तो कैसा रहेगा?

9. इस उपन्यास की आज क्या प्रासंगिकता है?

राकेश कुमार सिंह: इस प्रशन के उत्तर के लिए मैं आपको अपने उपन्यास "पठार पर कोहरा" के पृष्ठ 124 पर ले जाना चाहूंगा जहां संजीव बच्चे सोनारा से कहता है, "याद रखो बंधु, जो लोग अपने बाप दादा के दु:खों और उलगुलान को भुला देंगे, उन्हें अपने पुरखों से भी ज्यादा दु:ख उठाने पड़ेंगे, और फिर उस दु:ख से छूटने के लिए लड़ाइयाँ भी उलगुलान से बड़ी।" और इस प्रशन का उत्तर मुझसे बेहतर हिंदी आलोचना दे चुकी है। जनसत्ता के (दिल्ली) 28 अप्रैल 2013 के अंक में प्रकाशित केदार प्रसाद मीणा की समीक्षा का अंतिम क्षेपक (पैराग्राफ) देख ले। निश्चय ही आपके प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा।

10. भविष्य की आपकी लेखन की योजनाएँ क्या हैं?

राकेश कुमार सिंह: भविष्य में क्या कुछ और संभव हो सकेगा यह फिलहाल तय कर पाना कठिन। कुछ कहानियां अधपकी है तो सही एक उपन्यास 1857 की क्रान्ति और पलामू को लेकर अंकुर रहा है। फिलहाल तो .... आने वाला है "आपरेशन महिषासुर"।

*****

परिशिष्ट - III

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	:	जुदिथ ज़ोपारी
शिक्षा	:	एम. ए. (हिंदी)
विभाग	:	हिंदी
शोध प्रबंध का शीर्षक	:	'हुल पहाड़िया': संवेदना और शिल्प
प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	:	04.08.2016
शोध प्रस्ताव की संस्तुति		
(i) बी. ओ. एस.	:	02.05.2017
(ii) स्कूल बोर्ड	:	26.05.2017
पंजीयन संख्या	:	MZU/M.Phil./369 of 6.05.2017

'हुल पहाड़िया' : संवेदना और शिल्प

शोध-संक्षिप्तिका

हिन्दी साहित्य में आदिवासी समुदाय पर कम ध्यान दिया गया है। आदिवासियों के संघर्ष, अस्मिता का संकट, सामाजिक-राजनीतिक स्वतंत्रता आदि पर हिंदी साहित्यकारों का ध्यान कम गया है। इस कमी को पूरा करने का प्रयास राकेश कुमार सिंह ने अपने कथा साहित्य द्वारा किया है। केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि भारतीय इतिहास में भी आदिवासी संघर्षों एवं स्वाधीनता संग्राम में उनके योगदान को उपेक्षित किया गया है जिस कमी की तरफ राकेश कुमार सिंह इशारा करते हैं और अपने कथा लेखन के द्वारा उस कमी को पूरा करने का गंभीर प्रयास करते हैं। रसायन विज्ञान का छात्र होते हुए भी राकेश कुमार सिंह ने हिंदी कथा साहित्य लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। उनके कथा साहित्य में आदिवासी जीवन और उनके संघर्षों का व्यापक चित्रण मिलता है।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंधको चार अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय 'रचनाकार का परिचय और विषय की अवधारणा' है, जिसमें कथाकार राकेश कुमार सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी जनजीवन पर

लिखने वाले साहित्यकारों में राकेश कुमार सिंह का अपना एक विशिष्ट स्थान है। उनका जन्म झारखण्ड के पलामू जिला के ग्राम गुरहा में 20 फ़रवरी 1960 ई. को हुआ था। उन्होंने विज्ञान शाखा की पढ़ाई की तथा रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर एवं विधि स्नातक की भी डिग्री प्राप्त की। वर्त्तमान में वे हरप्रसाद दास जैन महाविद्यालय, आरा, बिहार के रसायन विज्ञान विभाग में अध्यापन का कार्य कर रहे हैं ।

राकेश कुमार सिंह ने उपन्यास, कहानी और किशोर उपन्यास लिखे हैं। अभी तक उनके कुल पांच उपन्यास प्रकाशित हुए हैं- 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश' (2003), 'पठार पर कोहरा' (2003), 'जो इतिहास में नहीं हैं' (2005), 'साधो यह मुर्दों का गाँव' (2008) और 'हुल पहाड़िया' (2012) । इनके कहानी संग्रहों में'ओह पलामू' (2004), 'हांका तथा अन्य कहानियां' (2006), 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' (2006), 'महुआ मांदल और अँधेरा' (2007)आदि के नाम लिए जा सकते हैं। 'केशरीगढ़ की काली रात', 'वैरागी वन के प्रेत', 'नीलगढ़ी का खजाना' आदि इनके किशोर उपन्यासों के नाम हैं।

राकेश कुमार सिंह को उनके साहित्यिक योगदान हेतु कई सम्मान प्राप्त हुए हैं, जिनमें 'झारखण्ड का प्रतिष्ठित राधाकृष्ण सम्मान', 'मध्यप्रदेश का अम्बिका प्रसाद दिव्य रजत अलंकरण' और 'कमलेश्वर स्मृतिकथा सम्मान' प्रमुख हैं। इनकी कहानियों का अनेक भाषा में अनुवाद भी हुआ है। साथ ही 'ठहरिए आगे जंगल है' कहानी पर टेलीफिल्म भी बनी है। इन्होंने 'जहाँ

खिले हैं रक्त पलाश' उपन्यास पर आधारित फिल्म 'दस्ता' की पटकथा व संवाद लेखन का भी कार्य किया है।

राकेश कुमार सिंह ने अपने कथाओं में झारखण्ड के आदिवासियों के रहन- सहन, रीति-रिवाज, सभ्यता, खान-पान, वेश-भूषा, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, परंपरा, शोषण व संघर्षों आदि का व्यापक चित्रण किया है।

'हुल पहाड़िया' उपन्यास राकेश कुमार सिंह का नवीनतम उपन्यास है जो सन् 2012 में सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास झारखण्ड के आदिवासी जनजाति के आदि विद्रोही 'तिलका मांझी' की समरगाथा है। इसमें लेखक ने झारखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्य विस्तार एवं वहाँ के पहाड़िया आदि जनजातियों के ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा किये जा रहे अमानवीय शोषण एवं अत्याचारों का तथ्यपरक वर्णन किया है तथा उन अमानवीय अत्याचारों एवं शोषण से मुक्ति हेतु झारखण्ड के आदिवासियों के प्रारंभिक संघर्षों का भी व्यापक चित्रण किया है।

राकेश कुमार सिंह का यह एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। 'हुल पहाड़िया' का अर्थ पहाड़िया जनजाति का विद्रोह है अर्थात् इस उपन्यास में केवल तिलका मांझी के विद्रोह को ही नहीं बल्कि इसके साथ अन्य पहाड़िया लोगों की विद्रोह भावना को भी प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उन्होंने आदि विद्रोही तिलका मांझी के चरित्र चित्रण के साथ-साथ झारखण्ड के आदिवासियों

के संघर्ष-यात्रा को भी तथ्यपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में केवल आदिवासी पुरुषों के संघर्षों को ही नहीं बल्कि स्त्रियों के संघर्षों को भी वाणी दी गयी है। तिलका मांझी की पत्नी रुपनी इसका प्रतिनिधित्व करती है।

राकेश कुमार सिंह ने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में वर्तमान युग के मगध विश्वविद्यालय बोधगया(बिहार) के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो. श्यामबिहारी सिंह, लन्दन विश्वविद्यालय की स्वर्णपदक विजेता छात्रा जेनिफर स्पीयर्स और पत्रकार राजेंद्र मुर्मू के बीच के आपसी वार्तालाप और विचार-विमर्शों के माध्यम से भारतीय इतिहास और उसमें तिलका मांझी और पहाड़िया जनजाति की भूमिका और संघर्ष को रेखांकित किया है। प्रो. सिंह भारतीय इतिहास पर चर्चा करते हुए भारत में अंग्रेजों के आगमन, पहाड़िया विद्रोह के उदय और तिलका मांझी के जीवन पर प्रकाश डालते हैं और इस प्रकार उपन्यास का कथानक विकसित होता जाता है। वे बताते हैं कि झारखंड के राजमहल पहाड़ों में बसे पहाड़िया जनजाति में मांझी चुनने की परंपरा विशिष्ट और कठिन होती है। जबरा उर्फ़ तिलका पहाड़िया को मांझी के पुत्र होने पर भी इन कठिन परीक्षाओं से गुजरना पड़ा। तीन कठिन परीक्षाओं से गुजरने और उसमें सफल होने के पश्चात ही तिलका पहाड़िया को पिता की असामयिक मृत्यु के बाद खाली मांझी का पद प्रदान किया गया। इसी घटना से 'हुल पहाड़िया' उपन्यास की शुरुआत होती है।

जब जंगलतराई में अकाल पड़ता है, तब तिलका अपने साथियों के साथ अंग्रेजों का माल लूट लेता है। कम्पनी का माल लूटे जाने के कारण अंग्रेज पहाड़िया लोगों पर आक्रमण करने की योजना बनाते हैं। अंग्रेज संथालों को पहाड़ों पर लाकर पहाड़िया लोगों से लड़ाने की योजना बनाते हैं। अंग्रेजों द्वारा आगस्टस क्लीवलैंड को राजमहल पहाड़ के कलेक्टर के पद पर नियुक्त किया जाता है और वह अनेक प्रकार से पहाड़िया लोगों से छद्म मैत्री भाव स्थापित करने का प्रयास करता है, जिसके छद्म उदार व्यवहार से धोखा खाकर पहाड़िया लोग उस पर विश्वास करने लगते है और उसे 'चिलमिली साहब' के नाम से पुकारने लगते हैं। वह उन्हें कई सुझाव देता है और उनके पंचायत में श्रोता-दर्शक बन कर उपस्थित रहता है। उनके साथ शिकार करने के लिए भी जाता है। वह जबरा को ब्लैकमेल कर अपने साथ भागलपुर चलने के लिए मना लेता है और 'हिलरेंजर्स' की स्थापना करता है जिसका कमांडर जबरा को बनाया जाता है। इस प्रकार वह पूर्व कलेक्टर कैप्टेन ब्राउन का सपना पूरा कर देता है। संथाल और मुंडा से लड़ने के लिए 'हिलरेंजर्स' को भेजा जाता है इसी दौरान जबरा को 'तेलियागढ़ी वाला सपना' (स्वतंत्र पहाड़िया राज्य का सपना) आता है। वह हकीकत से जाग जाता है और पहाड़िया जवानों को एकत्रित कर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह शुरू कर देता है। अंग्रेज पहाड़िया लोगों को उनके ही पहाड़ों पर घेर कर कैद कर देते हैं जिसके कारण वे लोग भूखों मरने लगते हैं। तब तिलका अपने साथियों के साथ विद्रोह को दोबारा प्रारंभ करता है।

"यह संघर्ष उस जीवन के लिए था, जिसकी नियति है मरण। एक ओर थे शोषित, वंचित, काले, अनपढ़, भूखे, पहाड़ों के चिर निवासी पहाड़िया। दूसरी और थी हड़प नीति की आराधक, विश्व की सर्वाधिक सभ्य-सुशिक्षित होने का दावा करने वाली अंग्रेज जाति, जो पृथ्वी के जंगलतराई जैसे भू-क्षेत्रों को सभ्य और सुशिक्षित बनाने के पवित्र उद्देश्यों का नकाब धारे अविकसित क्षेत्रों में सेंध लगाती थी और फिर अपने साम्राज्यवादी पंजे गाड़कर उन क्षेत्रों पर सदियों की दासता लाद कर वहां के आदि निवासियों का रक्त चुस्ती रहती थी।" (हुल पहाड़िया, पृष्ठ सं- 315)

'जीवन का अंतिम बेझा-तुन खेलते' (पहाड़िया आदिवासी समाज में तीन दिनों तक चलने वाला शिकार का पर्व) पहाड़िया लोग मर रहे थे। अंत में तिलका पकड़ा गया और उसे फांसी दे दी जाती है परन्तु तिलका के मरने से इस विद्रोह का अंत नहीं होता है। बड़की के पुत्र को भी वही 'तेलियागढ़ी वाला सपना' (स्वतंत्र पहाड़िया राज्य का सपना) आता है जो तिलका मांझी को आता था और इसी से बड़की के मन में भी विद्रोह का भाव उत्पन्न होता है और यहीं उपन्यास का अंत होता है।

भारतीय आदिवासी विद्रोही नायकों की परंपरा में तिलका मांझी, सिदो-कान्हू, चांद-भैरव, मुरमू भाइयों, बिरसा-मुंडा, टाना भगत आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं, परन्तु उनके स्वतंत्रता संघर्ष को प्रारंभ में इतिहासकारों विशेष कर साम्राज्यवादी अंग्रेजी इतिहासकारों की उपेक्षा का शिकार होना पड़ा, उन्हीं

के नक़्शे कदम पर चलते हुए कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी इनकी अनदेखी की। जिन भारतीय आदिवासी विद्रोही नायकों की उपेक्षा की गयी, उन में से एक महत्वपूर्ण नाम तिलका मांझी का है।क्रांति के इस प्रथम अग्रदूत ने राजमहल की पहाड़ियों में ईस्ट इंडिया कम्पनी की साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध नगाड़ा बजाकर विद्रोही की शुरुआत की थी। परन्तु क्रांति के इस महानायक को इतिहास में वह स्थान नहीं दिया गया जिसके वे हकदार थे। विवादों से घिरे रहे इस विद्रोही नायक को अपने होने के प्रमाण बार-बार प्रस्तुत करने पड़े।

कथाकार राकेश कुमार सिंह ने बड़ी लगन के साथ इस महानायक की मुक्तिकामी चेतना के साथ उस समय के पहाड़िया समाज के दुःख-दैन्य, मरणांतक संघर्ष और इस जनजाति की अपने काल में सार्थक हस्तक्षेप गाथा को शब्दबद्ध किया है। उपन्यासकार ने गहन प्रमाणिक शोध के साथ क्रांति के इस प्रथम अग्रदूत की कथा को इतिहास(तथ्य) एवं कल्पना के मेल से गढ़ा है और उसे भाषा एवं शिल्प की चासनी में लपेट कर इस तरह प्रस्तुत किया है कि तिलका मांझी जन-जन में व्यापसकें और इतिहास की तत्संबंधी कमी पूरी हो सके। द्वितीय उप अध्याय 'संवेदना और शिल्प की अवधारणा' है।इसके अंतर्गत संवेदना का अर्थ और परिभाषा बताते हुए उसके स्वरुप पर प्रकाश डाला गया हैं। संवेदना और साहित्य का गहरा सम्बन्ध होता हैं। संवेदना कथा-लेखन का आतंरिक रूप होता हैं। रचनाकार अपने जिवानुभूति को रचना में,

कल्पना के साथ अभिव्यक्त करता हैं और उसे साकार रूप प्रदान करता है। उसकी यहीं अनुभूति रचनकार की संवेदना बन जाती हैं। फिशर के अनुसार अंतर्वस्तु केवल 'क्या प्रस्तुत किया जाए' में ख़त्म नहीं होता बल्कि किस सामजिक और लेखक के व्यक्तिगत चेतना के साथ प्रस्तुत किया गया हैं। युग परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक परिस्थियों में भी बदलाव होता हैं जिसके कारण लेखक के संवेदना में भी परस्पर बदलाव आ जाता हैं। रचना-प्रक्रिया में 'शिल्प' की महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। रचनाकार अपने अनुभवों और अनुभूति को पाठकों के हृदय में मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने की कला हैं। 'शिल्प' कथा-लेखन की बाह्य रूप हैं। जिस प्रकार आभूषण के बीना स्त्री फीका पड़ जाती हैं उसी प्रकार शिल्प के बिना कथा-लेखन अमूल्य बन जाता हैं। निष्कर्षत: इस अध्याय में रचनकार के व्यक्तित्व एवं उनके कृतित्व को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया हैं और उपन्यास की संवेदना और शिल्प की अवधारणा पर सैद्धांतिक दृष्टि से संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की संस्कृति और मूल्यगत संवेदना' है। इस अध्याय के तहत दो उप अध्याय हैं। प्रथम उप अध्याय है 'पहाड़िया जनजाति की संस्कृति' और द्वितीय उप अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की मूल्यगत संवेदना' है। प्रथम उप अध्याय के अंतर्गत संस्कृति का अर्थ और परिभाषा देते हुए 'हुल पहाड़िया' उपन्यास के माध्यम से पहाड़िया जनजाति की संस्कृति, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार आदि से जुड़े

अनेक विषयों के वैशिष्टय का उद्घाटन किया गया है। पहाड़िया जनजाति में गाँव का मांझी चुनने की एक महत्वपूर्ण परंपरा है। पहाड़िया जनजाति के इस परंपरा के अनुसार मांझी का पद ग्रहण करने के लिए उम्मीदवारों को गाँव के पंचायत द्वारा निर्धारित किए गए चुनौतियों को पूरा करके अपनी योग्यता साबित करनी पड़ती थी, चाहे वह मांझी का ही पुत्र क्यों न हो। इन चुनौतियों के द्वारा पंचायत को उम्मीदवारों के बल, बुद्धि और शक्ति के साथ-साथ कुछ अन्य गुणों जैसे निष्पक्ष दृष्टि का होना, संगठनात्मक क्षमता का होना, नेतृत्व निपुणता और चातुर्य आदि योग्यताओं एवं गुणों को देखने और परखने का मौका मिलता था। उनमें सफल होने के बाद ही उसे मांझी का पद दिया जाता था। पहाड़िया जनजातीय मेंअपने ही जनजातीय समाज के अंतर्गत विवाह सम्बन्ध स्थापित करने की परंपरा थी परन्तु एक ही गोत्र में विवाह संबंधों को निषिद्ध किया गया है। इसके साथ ही किसी व्यक्ति की सामजिक स्थिति के उच्च या निम्न होने का विवाह संबंधों पर कोई फर्क नहीं पड़ता है।

पर्व-त्यौहार भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इसके बिना समाज खुशहाल नहीं हो सकता है। पर्व-त्यौहार हमारे जीवन को एक नई आशा, आनंद, उमंग व उत्साह की भावना से भर देते हैं। झारखण्ड के आदिवासी समाज भी अनेक प्रकार के पर्व-त्यौहार मनाते हैं, कुछ पर्व तो इसे है जिन्हें केवल एक जनजाति ही नहीं बल्कि आस पास के सभी गांवों की जनजातियां एक साथ मिलकर मनाती हैं। लेखक ने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में पहाड़िया

जनजाति के एक विशेष पर्व- 'बेझा-तुन पर्व', जिसका अर्थ है तीन दिन का शिकारी-पर्व, का महत्वपूर्ण ढंग से उल्लेख किया है। इस पर्व के विवरण से यह ज्ञात होता है पहाड़िया जनजातीय समाज और शिकार में गहरा सम्बन्ध रहा है। पहाड़िया जनजाति समाज में किशोर और किशोरियों का पृथक पृथक युवा गृह होता था जिसमें वे शादी से पूर्व रहते थे और रात बिताते थे। जहाँ उन्हें भावी जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान और रीति रिवाजों का प्रशिक्षण दिया जाता था।

द्वितीय उप अध्याय 'पहाड़िया जनजाति की मूल्यगत संवेदना' के अंतर्गत मूल्य को परिभाषित करते हुए पहाड़िया जनजाति की प्रेम, त्याग, बलिदान, पारिवारिक सम्बन्ध एवं स्त्रियों के प्रति उनकी उद्दत दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है। सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक जीवन के साथ मूल्य का गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार गाँव के लोगों के लिए गाँव के मुखिया और पंचायत की बात का पालन करना एक सामजिक मूल्य है उसी प्रकार गाँव की सुरक्षा और गाँववालों की जान-माल की रक्षा का दायित्व मुखिया के ऊपर निर्भर करता है, जिसका पालन करना उसका नैतिक एवं राजनीतिक दायित्व और मूल्य है। संकट के समय मुखिया अपने गाँव को बचाने के लिए अनैतिक कार्य भी कर सकता था, जिस प्रकार दुर्भिक्ष अकाल के समय में अपने गाँव को भूख के कारण मरने से बचाने के लिए तिलका मांझी कंपनी के हरकारों एवं डाकियों पर बार-बार आक्रमण करता है और उनसे कम्पनी का रुपया और रसद का

सामान लूट लेता है पर इन सामानों को वह अपने पास नहीं रखता है बल्कि भूख से मर रहे अपनी गाँववालों की मदद के लिए उन पैसों से खाने का अन्न खरीदता है और उन्हें गाँववालों में बाँट देता है। इस प्रकार एक प्रकार का अनैतिक कार्य करके भी वह अपनी मुखिया के कर्तव्यों का पालन करता है और इस प्रकार अपने गांववालों की रक्षा करके एक आदर्श की स्थापना करता है। पहाड़िया जनजाति में एक दूसरे की बात का मान रखना एक महत्वपूर्ण बात मानी जाती है। दो गाँवों के बीच कैसी भी समस्या हो, असहमतियाँ हों, चाहे व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो या सामाजिक हो, उन समस्यों को सहमतिपूर्वक सुलझाने के लिए पंचायत बुलाई जाति थी। जब एक गाँव का मांझी पंचायत के लिए गिरह भेजता था तो उस गाँव के मांझी की गिरह का मान दूसरे गाँव के मांझी को रखना पड़ता था। जिस प्रकार 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में सोनारी गाँव के मांझी ने सिंगारसी गाँव के मांझी को गिरह भेजा था तो उसका मान रखा गया। किन्तु सिंगारसी गाँव का मांझी अस्वस्थ होने के कारण स्वयं नहीं जा पाया तो उसने अपने बदले अपने पुत्र तिलका मांझी को भेजा। इस न्योता का मान रखने के साथ-साथ दोनों गांवों के संबंधों को भी बचाए और बनाए रखा गया। दोनों गांवों के बीच वैमनस्य को मिटाने के लिए तिलका मांझी ने फागुन और गेंदी की शादी करवा दी जिससे दोनों गाँवों की इज्ज़त बच गयी और मान भी बना रहा। पहाड़िया समाज में केवल एक ही गाँव में नहीं बल्कि अनेक गाँवों के बीच भी एकता बनी रहती थी। उनके बीच जल, जंगल और जमीन को लेकर कभी वाद-विवाद नहीं होता था जब कभी कोई संकट आता था तो वे उसका

सामना मिल जुलकर करते थे। उनकी एकता की मिशाल 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में तब दिखाई पड़ती है जब वे एक साथ मिलकर अंग्रेजों का मुकाबला करते हैं। पहाड़िया जनजाति सीधी, सरल और सहज थी जिसका फ़ायदा व्यापारिक बुद्धि से संपन्न अंग्रेज उठा रहे थे परन्तु अंत में अपनी भूमि, पहाड़, जल, जंगल और जमीन के लिए पहाड़िया एकजुट होकर कम्पनी के प्रति विद्रोह करते है भले ही कम्पनी के विरुद्ध इस लड़ाई में वे अपनी जान गवाँ बैठते है इससे पहाड़िया जनजाति की अपनी भूमि, पहाड़, जल, जंगल और जमीन के प्रति उनके असीम प्रेम एवं ममत्व की झलक मिलती है। इस तरह इस अध्याय के अंतर्गत पहाड़िया जनजाति की परम्पराएँ, संस्कृति, रीति-रिवाजों, विश्वासों और मान्यताओं के वैशिष्टय का उद्घाटन किया गया है।

तृतीय अध्याय 'ईस्ट इंडिया कम्पनी की विस्तार-नीति और तिलका-मांझी का संघर्ष' है। इस अध्याय को दो उप अध्यायों में बांटा गया है। प्रथम उप अध्याय 'ईस्ट इंडिया कम्पनी का हस्तक्षेप और उसकी विस्तार-नीति' है और द्वितीय उप अध्याय 'तिलका मांझी का जीवन संघर्ष' है। प्रथम उप अध्याय के अंतर्गत भारत में अंग्रेजों के आगमन पर प्रकाश डाला गया है। प्रारंभ में 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' का गठन भारत के साथ-साथ एशिया महाद्वीप के देशों के साथ व्यापार करने के लिए किया गया था। इंग्लैंड की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी को 31 दिसम्बर 1600 ई. में रॉयल चार्टर प्रदान किया गया जिसके तहत ईस्ट इंडिया कम्पनी को हिन्द

महासागर के पूर्वी हिस्से पर वाणिज्य का एकाधिकार दिया गया। इस प्रकार इस नई कम्पनी को इंग्लैंड और एशिया के बीच व्यापार करने का और इसके लिए आवश्यक शक्ति (सेना) के इस्तमाल करने का एकाधिकार प्रदान किया गया। इन अधिकारों से लैस होने के बाद कम्पनी ने व्यापारिक कदम उठाये और अपने हितों की रक्षा के लिए सम्पूर्ण विश्व में सैनिक हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। प्रारंभ में कम्पनी का भारत में आगमन केवल व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में रूचि रखने के कारण हुआ था। परन्तु मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के उपरान्त उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता एवं अदुर्दर्शिता ने कम्पनी को भारत में अपने व्यापारिक एवं राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति को अग्रसारित किया। भारत की कमजोर राजनीतिक स्थिति का फ़ायदा उठाते हुए कम्पनी ने 1757ई. में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप किया और छल, बल, कल का इस्तमाल करते हुए बंगाल के नवाब को बिना खून बहाए पराजित कर दिया। 'पलासी के युद्ध' (1757) में विजयी प्राप्ति के बाद कम्पनी को राजनीतिक और आर्थिक स्तरों पर बहुत अधिक लाभ हुआ। 1764 ई.में सार्वभौम सत्ता के लिए कम्पनी और *मीर कासिम* (बंगाल के नवाब), अवध के नवाब और मुग़ल बादशाह की संयुक्त सेना के बीच बक्सर का युद्ध हुआ था, इसमें भी कम्पनी की जीत हुई और भारत के दो सौ सालों की गुलामी की शुरुआत हुई। इस युद्ध के बाद कम्पनी के हाथ भारत की राज-सत्ता की चाभी लग गयी और उसके हाथ संयुक्त बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी भी आ गयी। बंगाल, बिहार

और उड़ीसा के आदिवासियों पर अंग्रेजों का दमन और शोषण इस दीवानी की प्राप्ति के बाद हीप्रारंभ हुए।

सामान्यत: आदिवासियों को अशिक्षित, भोला तथा पिछड़ा माना जाता है। सीधे, सादे, सरल जंगलतराई के आदिवासियों की स्वतंत्रता को येनकेन प्रकारेण बाधित कर कम्पनी उन्हें गुलाम बनाने की हर चाल चल रही थी। उनका शारीरिक और मानसिक रूप से शोषण कर रही थी। कम्पनी आदिवासियों के प्राकृतिक अधिकारों पर रोक लगाते हुए उनके भूमि पर कब्ज़ा कर उनसे ही निर्यात के लिए खेती करवाने लगी थी। सरल और भोले आदिवासी अपने ही ज़मीनों पर श्रमिक बनने लगे थे। कम्पनी ज़मींदारों, राजाओं से कर वसूलने लगी थी और साथ ही साथ आदिवासी जनजातियों पर भी कर का बोझ लाद रही थी। आदिवासियों से कर वसूल कर कम्पनी पैसा कमा रही थी और उन्हें सभी प्रकार से लूट रही थी। लेकिन पहाड़िया जनजाति इस कर व्यवस्था और लूट का विरोध करती है क्योंकि जिस जमीन से कम्पनी कर वसूलना चाहती थी। वह जमीन कभी भी कम्पनी की नहीं थी। उस जमीन पर पहाड़िया आदिवासियों का नैसर्गिक अधिकार था। यहाँ तक की मुग़ल शासन काल में भी उन्होंने कभी किसी शासक को कर नहीं चुकाया था। लेकिन कम्पनी उन्हें कर चुकाने के लिए बाध्य कर रही थी।

कंपनी पहाड़िया आदिवासियों से छल-कपट और पैसे का लालच देकर उनके अनाजों को कम दाम में खरीदकर जमा कर लेती है और अकाल के

समय उन्हीं अनाजों का दाम बहुत ज्यादा बढ़ा देती है, परिणामस्वरूप पहाड़िया जनजाति को भूखे मरने की नौबत आ जाती है। अंग्रेजों को इस बात का अनुमान था कि पहाड़िया जनजातीय के पास अनाज खरीदने के लिए पर्याप्त पैसे नहीं हैं, जिससे वे विवश हो जायेंगे और उनकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। फिर वे उनपर और ज्यादा मनमाना अत्याचार कर सकेंगे और उनका विविध प्रकार से शोषण कर सकेंगे। इस प्रकार अंग्रेजों ने पहाड़िया जनजाति से उनकी भूमि, गाँव, जल, जंगल, जमीन और प्राकृतिक संसाधनों को हड़पने का पूरा षड्यंत्र किया। जिसका स्पष्ट उल्लेख राकेश जी अपने इस उपन्यास में करते हैं।

द्वितीय उप अध्याय के अंतर्गत आदिवासी समाज के आदि विद्रोही तिलका मांझी के निजी जीवन और राजनीतिक जीवन के विभिन्न छोटे-बड़े उतार चढ़ाव को रेखांकित किया गया है। किशोरावस्था के समय से ही तिलका के संघर्ष की शुरुआत होती हैं। मांझी का पद ग्रहण करने के लिए उसे अपनी योग्यता सिद्ध करनी पड़ती है। अपनी भूमि, जल, जंगल, जमीन, प्राकृतिक संसाधनों और अपने गाँव को बचाने के लिए वह अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करता है। वह सारे पहाड़िया जनजाति को एकजुट कर अंग्रेजों का मुकाबला करता है और अंत में कलेक्टर अगस्टस क्लीवलैंड को विष भरी तीर से मार गिराता है। इस अध्याय में भारतीय राजनीति में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रवेश और उसकी साम्राज्यवादी विस्तार नीति का पर्दाफाश करते हुए झारखण्ड के आदिवासी

क्षेत्रों में उसकी शोषण-नीति का उद्‌घाटन किया गया है और झारखण्ड क्षेत्र के पहाड़िया जनजातियों पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के विविध रूपा दमनकारी नीतियों को भी विस्तार से रेखांकित किया गया है। इस प्रकार इस अध्याय में पहाड़िया जनजाति के आदि विद्रोही तिलका मांझी के जीवन-चरित्र और उनके विविध रूपा संघर्षों पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय 'हुल पहाड़िया का शिल्प' है, इसके अंतर्गत दो उप अध्याय हैं -1. भाषा 2. शैली । प्रथम उप अध्याय 'भाषा' के अंतर्गत उपन्यास में प्रयुक्त भाषा, मुहावरों एवं लोकोक्तिओं आदि के वैशिष्ट्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है। 'हुल पहाड़िया' उपन्यास की भाषा सहज, सरल और प्रवाहपूर्ण है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल किया है। द्‌वितीय उप अध्याय 'शैली' के अंतर्गत उपन्यास में प्रयुक्त विभिन्न शैलियों का विश्लेषण किया गया है और ऐतिहासिक उपन्यास की दृष्टि से इसकी शैली का विश्लेषण किया गया है। राकेश जी ने अपने 'हुल पहाड़िया' उपन्यास में वर्णनात्मक, संवादात्मक, चित्रात्मक, पूर्वदीप्ति, काव्यात्मक आदि विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। उपन्यास को रोचक बनाने के लिए राकेश जी ने किस्सागोई शैली का इस्तेमाल करते हैं। ट्रेन में यात्रा करते हुए तीन यात्री मिलते हैं- मगध विश्वविद्‌यालय, बोधगया(बिहार) के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो. श्यामबिहारी सिंह, लन्दन विश्वविद्‌यालय की स्वर्णपदक विजेता शोध छात्रा जेनिफर स्पीयर्स और

आदिवासी समाज और संस्कृति के मर्मज्ञ और पेशे से पत्रकार राजेंद्र मुर्मू। सहयात्रियों की जिज्ञासा को शांत करने के लिए मगध विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो. श्यामबिहारी सिंह किस्सागोई शैली (स्वयं लेखक ने इस उपन्यास की शैली के लिए किस्सागोई शैली का प्रयोग अपने साक्षात्कार में किया है) में आदि विद्रोही तिलका मांझी की कथा सुनाते हैं और उसके जीवन मरणांतक संघर्ष एवं उद्दत चरित्र पर प्रकाश डालते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'हुल पहाड़िया' एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें इतिहास प्रसिद्ध आदि विद्रोही तिलका मांझी के जीवन संघर्ष एवं ऐतिहासिक महत्त्व का रेखांकन राकेश कुमार सिंह ने किया है। आदि विद्रोही तिलका मांझी के विद्रोह एवं संघर्ष की साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने घोर उपेक्षा की है। राकेश जी अपनी गहन शोध वृत्ति, लेखकीय संवेदना और काव्य की रूप विधायिनी शक्ति कल्पना के मणिकांचन संयोग से उस कमी को पूरा करते हैं और तिलका मांझी के उद्दत चरित्र को अपनी प्रभावशाली लेखनी के माध्यम से हिंदी समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं। हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परंपरा में यह उनका एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। जितने धैर्य, ईमानदारी, लगन, मेहनत, निष्पक्षता, तथ्यपरकता से उन्होंने ऐतिहासिक साक्ष्यों का संग्रह, अवलोकन, विश्लेषण और मूल्यांकन कर उसे उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है वह काबिले तारीफ़ है। हिंदी

ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा में 'हुल पहाड़िया' एक मील का पत्थर साबित होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

*****

परिशिष्ट - I

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ :

राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

सहायक ग्रंथ :

हिंदी :

अज्ञेय, हिंदी साहित्य - एक आधुनिक परिदृश्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1967

गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

चंद्रकांत बांदिवडेकर, उपन्यास स्थिति और गति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

डॉ. जवाहर सिंह, हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986

डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, हिंदी कहानी में शिल्प विधि का विकास,

डॉ. सुरेश सिन्हा, हिंदी उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1972

डॉ. सुरेश बाबर, भीष्म सहनी के साहित्य का अनुशीलन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1997

नामवर सिंह, आधुनिक हिंदी उपन्यास भाग(1-2), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

निर्मल कुमार बोस, भारतीय आदिवासी जीवन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दिल्ली, 2013

प्रो. सतीश चन्द्र मित्तल, ब्रिटिश इतिहास तथा भारत, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2010

भारतीय इतिहास के कुछ विषय - भाग 3, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 2013

रणेंद्र (सं), सुधीर पाल (सं), झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया- खंड 1, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,2008

राकेश कुमार सिंह, जहाँ खिले हैं रक्त पलाश, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003

राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003

राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं हैं, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005

राकेश कुमार सिंह, साधो यह मुर्दों का गाँव, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008

राजेन्द्र प्रसाद सिंह, तिलका मांझी, नयी किताब, दिल्ली, 2011

रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2015

रामचंद्र तिवारी, हिंदी उपन्यास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010

रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

लक्ष्मी सुब्रमणयण, भारत का इतिहास 1707 से 1857 तक, ओरियंट ब्लैक्स्वान, नई दिल्ली, 2013

वीर भारत तलवार, झारखंड के आदिवासियों के बीच, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

वीरेंद्र कुमार, आदिवासी विमर्श और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013

शेखर बंद्योपाध्याय, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरियंट ब्लैक्स्वान, नई दिल्ली, 2015

English :

A.R.Desai, Social Background of Indian Nationalism, Popular Prakashan, Mumbai, 2010

Sakhawliana, Public Administration for class XI & XII, 2010

कोश :

कलिका प्रसाद, राजवल्लभ सही, मुकुन्दी लाल स्ग्रिवास्तव(संपादक), बृहत् हिंदी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2014

डॉ. अमरनाथ(संपादक), हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013

डॉ. रामचंद्र वर्मा, बृहत् प्रमाणिक हिंदी कोश, लोक भारती प्रकाशन, 2006

धीरेन्द्र वर्मा(संपादक), हिंदी साहित्य कोश (भाग- 1, 2), ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 2000

बदरीनाथ कपूर(संपादक), वैज्ञानिक परिभाषा कोश, शब्दलोक प्रकाशन, बनारस, 1965

मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव(संपादक), ज्ञानशब्द कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी,1986

रामचंद्र वर्मा(संपादक), मानक हिंदी कोश, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग,1978

वामन शिवराज आप्टे(संपादक), संस्कृत-हिंदी कोश, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली,1989

पत्रिका :

अनंत कुमार सिंह(संपादक), जनपथ, आरा, मई, 2013

अनंत कुमार सिंह, दैनिक हिन्दुस्तान, 11 सितम्बर, 2003

कथाबिम्ब पत्रिका, अप्रैल-जून, 2002

जनसत्ता, दिल्ली, 28 अप्रैल, 2013

दैनिक जागरण, रांची, 31 अगस्त, 2012

डॉ. शशिकला राय, कथाक्रम, अप्रैल-जून, 2004

मनोज कुलकर्णी, कथादेश, अक्टूबर, 2008

रजनीगुप्त, इंडिया टुडे, अंक 20 अक्टूबर,2003

श्यामसुंदर दूबे, अक्षरा, जनवरी - फरवरी, 2006

सुरेन्द्र दूबे, समीक्षा, जुलाई- सितम्बर, 2004

वेबसाइट :

https://samalochan.blogspot.com/2014/11/blog-post_7.html?m=1

https://bharatdiscovery.org/india/तिलका_मांझी

hesnathpandey.blogspot.in/2015/05/blog-post.html?m=1

परिशिष्ट - III

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	:	जुदिथ ज़ोपारी
शिक्षा	:	एम. ए. (हिंदी)
विभाग	:	हिंदी
शोध प्रबंध का शीर्षक	:	'हुल पहाड़िया': संवेदना और शिल्प
प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	:	04.08.2016
शोध प्रस्ताव की संस्तुति		
(i) बी. ओ. एस.	:	02.05.2017
(ii) स्कूल बोर्ड	:	26.05.2017
पंजीयन संख्या	:	MZU/M.Phil./369 of 6.05.2017